प्रथम इंटरनेशनल की कहानी

प्रथम इंटरनेशनल की कहानी

मार्चेलो मुस्तो

प्रस्तोता
गोपाल प्रधान

AAKAR

प्रथम इंटरनेशनल की कहानी
गोपाल प्रधान

© आकार बुक्स

प्रथम संस्करण 2018

ISBN 978-93-5002-563-5

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक
आकार बुक्स
28 ई पॉकेट IV, मयूर विहार फेस I
दिल्ली 110 091
www.aakarbooks.com

लेजर सेट
साक्षी कम्प्यूटर्स, दिल्ली

मुद्रक
सपरा ब्रदर्स, नोएडा

विषय-सूची

प्रस्तावना 7

प्रथम इंटरनेशनल की कहानी 9

परिशिष्ट 72

दस्तावेज

1. *इंटरनेशनल की उद्घाटन-घोषणा / कार्ल मार्क्स* 77
2. *इंटरनेशनल की आम नियमावली / कार्ल मार्क्स* 67
3. *अस्थायी जनरल कौंसिल के डेलीगेटों के लिए निर्देश : विभिन्न प्रश्न / कार्ल मार्क्स* 91
4. *फ़्रांको-एशियाई युद्ध के बारे में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की पहली चिट्ठी / कार्ल मार्क्स* 102
5. *फ़्रांको-एशियाई युद्ध के बारे में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की दूसरी चिट्ठी / कार्ल मार्क्स* 108
6. *मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में / फ्रेडरिक एंगेल्स* 117
7. *हेग में हुई जनरल कांग्रेस के प्रस्तावों का एक अंश / कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स* 119
8. *हेग कांग्रेस / कार्ल मार्क्स* 120

प्रस्तावना

मार्चेलो मुस्तो ने प्रथम इंटरनेशनल के 150वीं सालगिरह के अवसर पर एक किताब संपादित की–'द वर्कर्स यूनाइट!: द इंटरनेशनल 150 ईयर्स लेटर'। इसका प्रकाशन 2014 में ब्लूम्सबरी एकेडमिक से हुआ था। इस किताब में प्रथम इंटरनेशनल के बहुत सारे प्रसिद्ध दस्तावेज शामिल किए गए थे। इसकी लम्बी भूमिका भी मार्चेलो ने लिखी थी। प्रस्तुत पुस्तिका उसी भूमिका का हिंदी अनुवाद है। साथ ही भूमिका में जिन दस्तावेजों का जिक्र है उन्हें भी परिशिष्ट के बतौर शामिल कर दिया गया है। मार्क्स लिखित इन दस्तावेजों का हिंदी अनुवाद प्रगति प्रकाशन से प्रकाशित मार्क्स-एंगेल्स की संकलित रचनाओं में से कुछेक संशोधनों के साथ लिया गया है।

मार्क्स की राजनीतिक सक्रियता के सिलसिले में प्रथम इंटरनेशनल और उसमें मार्क्स की भूमिका को मील का पत्थर माना जाता है। मार्क्स ने इसे 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के अंतिम वाक्य 'दुनिया के मज़दूरों, एक हो!' को साकार करने का बड़ा अवसर समझा। सचमुच यूरोपीय महाद्वीप और अमेरिका तक इसके प्रसार ने मज़दूर वर्ग की अंतर्राष्ट्रीयता का सबूत दिया। इस बात के साक्ष्य मिलते हैं कि हमारे देश भारत से भी कुछ लोगों ने इससे जुड़ने के लिए चिट्ठी लिखी थी और जनरल कौंसिल की एक बैठक में उस पर विचार भी हुआ था। सलाह दी गई थी कि स्थानीय मज़दूरों को शामिल करके संगठन बनाया जाए। इससे प्रतीत होता है कि पत्र लेखक कलकत्ते में काम करने वाले अंग्रेज श्रमिक रहे होंगे।

अमेरिकी गृहयुद्ध में लिंकन को समर्थन देते हुए इंटरनेशनल ने प्रस्ताव पारित किया और उसे अमेरिका भेजा था। जवाब लंदन स्थित अमेरिकी दूतावास के जरिए आया था। इससे रंगभेद के विरोध के साथ मार्क्सवाद के संवाद की

शुरुआत हुई जो बाद के दिनों में और भी ठोस हुआ। यह देखकर अचरज होता है कि मज़दूर आंदोलन के कुछ बुनियादी सवालों को उसी समय हल कर लिया गया था। तबसे ही मज़दूरों की हड़ताल उनकी गोलबंदी का सबसे कारगर हथियार बना हुआ है। इसकी मान्यता के लिए अराजकतावाद से जूझना पड़ा था। उसी समय अराजकतावाद के बरक्स मार्क्सवाद की कार्यनीति उभरना शुरू हुई थी। यह वैचारिक संदर्भ आज तक कायम है। पेरिस कम्यून के समर्थन के चलते हमें मार्क्सवाद की उस क्रांतिकारी परंपरा का पता चलता है जिसका विकास बर्जुआ उदारतावाद से लड़ते हुए हुआ था। इस तरह प्रथम इंटरनेशनल की इस कहानी से हमें इन दोनों भटकावों से संघर्ष के दौरान मार्क्सवाद के क्रांतिकारी पहलू के सामने उभरने और ठोस आंदोलन में नेतृत्वकारी विचारधारा के बतौर स्थापित होने के रोमांचक इतिहास का पता चलता है। आशा है वर्तमान समय के लिए इस इतिहास से कुछ सबक हासिल होंगे।

गोपाल प्रधान

प्रथम इंटरनेशनल की कहानी

1. आरम्भिक कदम

28 सितंबर 1864 को लंदन के बीचोबीच स्थित सेंट मार्टिन हाल लगभग दो हजार मज़दूरों की मौजूदगी से खचाखच भरा हुआ था। वे लोग इंगलैंड के ट्रेड यूनियन नेताओं और यूरोपीय महाद्वीप के कुछ श्रमिक समूहों की ओर से बुलाई गई सभा में शरीक होने के लिए आए थे। अग्रिम सूचना में कहा गया था कि 'पेरिस के कामगारों का एक प्रतिनिधिमंडल' आया है और वह अपने 'अंग्रेज भाइयों के उद्‌बोधन का जवाब देगा तथा जनता के बीच बेहतर समझदारी की योजना प्रस्तुत करेगा'। असल में एक साल पहले लंदन में जब जुलाई 1863 में कई फ़्रांसिसी और अंग्रेज मज़दूर संगठन जार के विरोध में पोलिश जनता के साथ एकजुटता जाहिर करने के लिए मिले थे तो उन्होंने मज़दूर वर्ग आंदोलन के प्रमुख उद्देश्यों के बारे में एक घोषणा की थी। मशहूर यूनियन नेता जार्ज आडगर (1813-77) ने फ़्रांसिसी मज़दूरों के नाम अंग्रेजों की ओर से एक उद्‌बोधन तैयार किया था जो बी-हाइव नामक पाक्षिक में छपा था :

> "मज़दूरों की भलाई के लिए जनगण का साथीपन बहुत जरूरी है क्योंकि हमने पाया कि जब कभी हम काम के घंटे कम करने के जरिए या मेहनत की कीमत बढ़ाने के जरिए अपने सामाजिक हालात को बेहतर बनाने की कोशिश करते हैं तो हमारे मालिक कम मज़दूरी पर हमारा काम करने के लिए फ़्रांसिसी, जर्मन, बेल्जियन या अन्य लोगों को लाने की धमकी देते हैं; और हमें दुख है कि ऐसा हुआ भी है। हालांकि इसका कारण यह नहीं था कि हमारे महाद्वीपीय भाई हमें कोई नुकसान पहुंचाना चाहते थे बल्कि इसका कारण तमाम देशों के औद्योगिक वर्गों के बीच नियमित और व्यवस्थित संचार का अभाव था। हमारा उद्देश्य कम

> मज़दूरी पाने वालों की मज़दूरी को यथासंभव उनकी मज़दूरी के करीब ले आना है जिन्हें बेहतर मज़दूरी मिलती है ताकि हमारे मालिक हमें एक दूसरे से लड़ा न सकें और अपनी लालच पूरी होने लायक न्यूनतम मज़दूरी तक न ले जा सकें।"

इस पहलकदमी के संगठनकर्ताओं को कल्पना नहीं थी, न ही उनको अनुमान था कि कुछ ही दिनों बाद इसका क्या नतीजा निकलेगा। उन्होंने सोचा था कि ऐसा अंतर्राष्ट्रीय मंच बनाया जाए जहां मज़दूरों पर असर डालने वाली प्रमुख समस्याओं पर विचार विमर्श किया जाएगा लेकिन उसमें मज़दूर वर्ग की ट्रेड यूनियन और राजनीतिक कार्यवाहियों को संयोजित करने वाले संगठन की स्थापना की बात शामिल नहीं थी। इसी तरह उनकी विचारधारा में शुरू में वर्ग संघर्ष और सुपरिभाषित राजनीतिक लक्ष्य की जगह लोगों के बीच भाईचारा और विश्व शांति का महत्व जैसे सामान्य मानवीय तत्व व्याप्त थे। इन्हीं सीमाओं के कारण सेंट मार्टिन हाल की सभा भी तत्कालीन ढेर सारी अमूर्त लोकतांत्रिक पहलकदमियों जैसी ही होती जिनका कोई नतीजा नहीं निकलता। लेकिन इसने तो मज़दूर आंदोलनों के सभी संगठनों हेतु ऐसे आदर्श रूप (इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन) को जन्म दिया जिसका अनुसरण बाद में सुधारवादियों और क्रांतिकारियों, दोनों ने संदर्भ बिंदु की तरह किया।

जल्दी ही समूचे यूरोप में इसने भावावेग की लहर उठा दी। वर्गीय एकजुटता को इसने साझा आदर्श बना दिया और दुनिया बदलने जैसे सबसे क्रांतिकारी लक्ष्य के लिए संघर्ष करने हेतु भारी संख्या में स्त्री-पुरुषों को प्रेरित किया। इसी वजह से 1868 में ब्रसेल्स में आयोजित इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस के मौके पर टाइम्स के मुख्य लेखक ने इस प्रोजेक्ट का मकसद ठीक ही बताया था :

> "केवल सुधार पर ही विचार नहीं हुआ, बल्कि जागरण और वह भी महज एक देश के नहीं बल्कि समूची मानव जाति के जागरण पर विचार हुआ। ईसाई चर्च को छोड़कर किसी भी संस्था ने शायद ही कभी इतना व्यापक लक्ष्य अपने लिए तय किया होगा। संक्षेप में इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन का यही कार्यक्रम है।"

इंटरनेशनल के कारण मज़दूर आंदोलन पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की स्पष्ट समझ हासिल कर सका, अपनी ताकत के बारे में अधिक सचेत हुआ तथा संघर्ष के नए और अधिक उन्नत रूप विकसित कर सका। इस संगठन की प्रतिध्वनि

यूरोप की सीमाओं के परे सुनाई पड़ी तथा इससे ब्यूनस आयर्स के कारीगरों और कलकत्ते के शुरुआती मज़दूर संगठनों में एक दूसरी दुनिया संभव होने की उम्मीद पैदा हुई। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के मज़दूर समूहों ने भी इसकी सदस्यता के लिए आवेदन किया।

इसके उलट शासक वर्गों में इसकी स्थापना की खबर से भय व्याप्त हो गया। इतिहास में मज़दूर भी सक्रिय भूमिका निभाना चाहते हैं इस खयाल से ही उनकी रीढ़ में झुरझुरी पैदा हो गई और ढेर सारी सरकारों ने इंटरनेशनल के खात्मे को अपना ध्येय बना लिया और उपलब्ध सारे साधनों के जरिए इसे अंजाम दिया।

2. सही जगह पर सही आदमी

जिन मज़दूर संगठनों ने इंटरनेशनल की स्थापना की वे कुछ-कुछ बहुरंगी थे। इसकी केंद्रीय चालक शक्ति ब्रिटेन के ट्रेड यूनियन थे जिनके लगभग सभी नेताओं की विश्वदृष्टि सुधारवादी थी और जिनकी दिलचस्पी मुख्य रूप से आर्थिक सवालों में थी। वे मज़दूरों के हालात में सुधार के लिए लड़ते थे लेकिन पूंजीवाद पर सवाल नहीं उठाते थे। इसलिए वे इंटरनेशनल को ऐसा हथियार समझते थे जो हड़ताल होने पर विदेशों से कामगार लाने पर रोक लगाकर उनके लक्ष्य का समर्थन कर सकता था।

संगठन में दूसरी महत्वपूर्ण ताकत साझेदारीवादी थे, जिनका फ़्रांस में लंबे दिनों से दबदबा था लेकिन बेल्जियम और फ़्रांसिसी भाषी स्विट्ज़रलैंड में भी वे मजबूत थे। पियरे जोसेफ प्रूधों (1809-65) के सिद्धांतों के अनुरूप वे राजनीति में मज़दूर वर्ग की किसी भी हिस्सेदारी और संघर्ष के हथियार के बतौर हड़ताल के विरोधी थे तथा स्त्री मुक्ति के सवाल पर उनके विचार संकीर्ण थे। संघीय तरीके से गठित सहकारी व्यवस्था की वकालत करने वाले ये लोग मानते थे कि कर्ज पर समान अधिकार के जरिए पूंजीवाद को बदलना संभव है। इसलिए कहा जा सकता है कि वे लोग इंटरनेशनल का दक्षिणपंथ थे।

ये दोनों घटक संख्या में बहुमत में थे। इन्हीं के साथ अलग किस्म के कुछ और भी तत्व थे। तीसरे महत्वपूर्ण लोग कम्युनिस्ट थे जो कार्ल मार्क्स (1818-43) के व्यक्तित्व के इर्द गिर्द समूहबद्ध थे। ये लोग अनेक जर्मन और स्विस शहरों में तथा लंदन में बहुत सीमित प्रभाव वाले छोटे छोटे समूहों में सक्रिय थे। वे पूंजीवाद

के विरोधी थे यानी मौजूदा उत्पादन प्रणाली का विरोध करते थे और इसे उखाड़ फेंकने के लिए राजनीतिक कार्यवाही को जरूरी समझते थे।

इंटरनेशनल की स्थापना के समय उसमें ऐसे तत्व भी शामिल थे जिनका समाजवादी परंपरा से कोई लेना देना नहीं था। उदाहरण के लिए पूर्वी यूरोप के प्रवासियों के कुछ समूह जो अमूर्त लोकतांत्रिक आदर्शों से प्रेरित थे। इनमें जिसेप मैज़िनी (1805-72) के अनुयायी थे जिनकी अंतर्वर्गीय धारणा का केंद्र राष्ट्रीय मांगें थीं और उत्पीड़ित जनता की मुक्ति के लिए आम अपील जारी करने के लिए उन्हें इंटरनेशनल उपयोगी लगता था।

यह तस्वीर इस तथ्य से और उलझ जाती है कि इंटरनेशनल में शरीक फ़्रांसिसी, बेल्जियन और स्विस मज़दूरों के कुछ समूह अपने साथ तमाम किस्म के भ्रामक विचार लेकर आए थे, कुछ किसी काल्पनिक आदर्श से प्रेरित थे; जबकि फ़र्दिनांद लासाल (1825-64) के अनुयायियों वाली पार्टी–जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स–इंटरनेशनल से कभी जुड़ी नहीं लेकिन इसके इर्द गिर्द घूमती रही और वह ट्रेड यूनियनवाद की विरोधी थी तथा केवल राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक कार्यवाही करने के पक्ष में थी।

नवजात इंटरनेशनल पर इन सभी समूहों ने अपने सांस्कृतिक ट्रेड यूनियन अनुभवों के जटिल जाल के निशान छोड़े। ऐसे व्यापक संगठन को संघीय आधार पर भी साथ रखना और सामान्य ढांचा बनाना सचमुच कठिन काम था। इसके अलावा, अगर साझा कार्यक्रम पर सहमति बन भी जाती तो प्रत्येक प्रवृत्ति जहां कहीं बहुमत में होती उन स्थानीय प्रभागों पर (कभी कभी केंद्रापसारी) असर डालती।

एक ही संगठन में इन सभी धाराओं को शांतिपूर्वक साथ साथ बनाए रखना और वह भी ऐसे कार्यक्रम के इर्द गिर्द जो उन सबके शुरुआती रुख से बहुत दूर था, मार्क्स की महान उपलब्धि थी। अपनी राजनीतिक प्रतिभा से उन्होंने ऊपरी तौर पर परस्पर विरोधी लगने वाली चीजों में संगति पैदा की और सुनिश्चित किया कि इंटरनेशनल अपने पहले के अनेक मज़दूर संगठनों की तरह तेजी से गुम न हो जाए। मार्क्स ने इंटरनेशनल को स्पष्ट मकसद मुहैया कराया और मार्क्स ने ही ऐसा ठोस वर्ग आधारित किंतु समावेशी राजनीतिक कार्यक्रम बनाया जिसके कारण इस संगठन को तमाम संकीर्णताओं से परे जन चरित्र हासिल हुआ। इसकी जनरल कौंसिल की राजनीतिक आत्मा हमेशा मार्क्स रहे : उन्होंने इसके सभी प्रमुख

प्रस्ताव लिखे और सभी कांग्रेसों की रपटें तैयार कीं (केवल 1867 की लूसान कांग्रेस को छोड़कर जब वे कैपिटल का प्रूफ़ पढ़ने में डूबे हुए थे)। वे 'सही जगह पर सही आदमी' थे जैसा कि कभी जर्मन मज़दूर नेता जोहान्न गेआर्ग इकारियस ने कहा था।

इंटरनेशनल के संस्थापक के रूप में मार्क्स की तस्वीर बाद में गढ़ी गई। इसके विपरीत वे तो सेंट मार्टिन हाल की सभा के आयोजकों में भी नहीं थे। मित्र एंगेल्स को एक चिट्ठी में उन्होंने बताया कि वे 'मंच पर न बोलने वाले की हैसियत' में बैठे थे। फिर भी तत्काल उन्होंने इस घटना में निहित संभावना को भांप लिया और नया संगठन अपना लक्ष्य सफलतापूर्वक हासिल करे इसकी गारंटी के लिए कड़ी मेहनत की। कम से कम कुछ लोगों के बीच उनके नाम की इज्जत थी जिसके चलते उन्हें 34 सदस्यी स्थायी समिति में नियुक्त किया गया और वहां उन्होंने जल्दी ही इतना भरोसा जीत लिया कि इंटरनेशनल का उद्घाटन भाषण और अस्थायी नियमावली लिखने की जिम्मेदारी उन्हें मिली। इन बुनियादी दस्तावेजों में और इसके बाद के अन्य दस्तावेजों में भी मार्क्स ने इंटरनेशनल के विभिन्न घटकों से उनके सर्वोत्तम विचार ग्रहण किए लेकिन इसके साथ ही संघाधिपत्यवादी रुझानों और संकीर्णतावादी स्वरों की सफाई भी कर दी। मजबूती से उन्होंने आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष को एक दूसरे से जोड़ा तथा अंतर्राष्ट्रीय सोच और कार्यवाही को न पलट सकने वाली चीज बना दिया।

मार्क्स की क्षमता की बदौलत ही इंटरनेशनल राजनीतिक संश्लेषण कर सका। उन्होंने विभिन्न राष्ट्रीय संदर्भों को ऐसे साझा संघर्ष के प्रोजेक्ट में गूंथ दिया जिसमें निर्देशक केंद्र से वे काफी हद तक स्वायत्त थे लेकिन पूरी तरह स्वतंत्र नहीं थे। कभी कभी एकता को बरकरार रखना मुश्किल हो जाता था खासकर इसलिए कि मार्क्स का पूंजीवाद विरोध, संगठन में कभी प्रमुख राजनीतिक मत नहीं था। बहरहाल समय बीतने के साथ कुछ उनकी नमनीयता के चलते और कुछ विभाजनों के चलते मार्क्स की सोच प्रधान सिद्धांत बन गई। काम बेहद कठिन था लेकिन उन दिनों के संघर्षों से राजनीतिक व्याख्या की कोशिशों को बहुत फायदा मिला। मज़दूरों की गोलबंदी की प्रकृति, पेरिस कम्यून की व्यवस्था विरोधी चुनौती, ऐसे व्यापक और जटिल संगठन को इकट्ठा रखने का अभूतपूर्व काम, विभिन्न सैद्धांतिक और राजनितिक मुद्दों पर मज़दूर आंदोलन की अन्य प्रवृत्तियों के साथ लगातार बहस : इन सबने मार्क्स को राजनीतिक अर्थशास्त्र की सीमाओं के पार

जाने को मजबूर किया जिसमें 1848 की क्रांति की पराजय तथा अधिकांश प्रगतिशील ताकतों के उतार के बाद से ही उनका सारा ध्यान लगा हुआ था। उन्हें भी अपने विचार विकसित और संशोधित करने, पुरानी तयशुदा बातों को बहस के लिए खोलने तथा अपने आपसे नए सवाल पूछने और कम्युनिस्ट समाज की मोटी रूपरेखा खींचकर खासकर पूंजीवाद की अपनी आलोचना को तीखा बनाने की प्रेरणा मिली। इंटरनेशनल में मार्क्स की भूमिका के बारे में पारंपरिक सोवियत नजरिया यह है कि अपने अध्ययन के जरिए मार्क्स ने जिस राजनीतिक सिद्धांत को पहले ही ढाल लिया था उसे इतिहास के उस दौर पर यांत्रिक तरीके से उन्होंने लागू कर दिया लेकिन यह नजरिया सच्चाई से पूरी तरह से अलग है।

3. सदस्यता और संरचना

जीवनकाल और बाद के दशकों में भी इंटरनेशनल का चित्रण विशाल और आर्थिक तौर पर मजबूत संगठन के रूप में किया जाता रहा है। चाहे अपूर्ण जानकारी के चलते हो या इसके कुछ नेताओं द्वारा असलियत को बढ़ा चढ़ाकर बताने के कारण या विरोधियों द्वारा निर्मम दमन का बहाना खोजने की वजह से हो, इंटरनेशनल की सदस्यता का हमेशा विस्फारित अनुमान किया गया। जून 1870 में इसके कुछ फ़्रांसिसी नेताओं पर अभियोग लगाने वाले सरकारी वकील ने कहा कि यूरोप में इस संगठन के 8 लाख से अधिक सदस्य हैं; एक साल बाद पेरिस कम्यून की पराजय के बाद टाइम्स ने इस संख्या को कुल 25 लाख बताया और अनुदारपंथियों में इसका अध्ययन करने वाला मुख्य मनुष्य आस्कर तेस्तुत (1840-अज्ञात) इसके 50 लाख से अधिक होने का अनुमान लगाता है।

असल में इंटरनेशनल की सदस्य संख्या इससे काफी कम थी। सही अनुमान लगाना हमेशा कठिन रहा और यह बात इसके नेताओं तथा इसका निकट से अध्ययन करने वालों के लिए भी उतनी ही सच है। लेकिन शोध की मौजूदा स्थिति में अंदाजा लगाया जाता है कि 1871-72 में इसके उठान के दिनों में यह संख्या डेढ़ लाख से कुछ अधिक थी : ब्रिटेन में पचास हजार, फ़्रांस और बेल्जियम में मिलाकर तीस हजार से ऊपर, स्विट्ज़रलैंड में छह हजार, स्पेन में लगभग तीस हजार, इटली में लगभग पचीस हजार, जर्मनी में दस हजार से ऊपर (लेकिन ज्यादातर सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी के सदस्य), इसके अलावा अन्य यूरोपीय देशों में कुछेक हजार तथा अमेरिका में चार हजार।

उन दिनों इंगलैंड की ट्रेड यूनियनों और जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स को छोड़कर प्रभावी मज़दूर वर्ग संगठनों का अभाव था, ऐसी स्थिति में यह संख्या निश्चित रूप से काफी थी। इस बात को भी दिमाग में रखना होगा कि अपने समूचे जीवनकाल में इंटरनेशनल को कानूनी संगठन की मान्यता केवल ब्रिटेन, स्विट्ज़रलैंड, बेल्जियम और अमेरिका में मिली थी। अन्य देशों में जहां इसकी मौजूदगी ठोस थी (फ़्रांस, स्पेन, इटली) वहां अनेक सालों तक यह कानूनी हाशिए पर रही और इसके सदस्यों को उत्पीड़न झेलना पड़ता था। जर्मन संघ के 39 राज्यों में इंटरनेशनल में शिरकत का मतलब कानून तोड़ना होता था और आस्ट्रो-हंगरी साम्राज्य में कुछ सदस्यों को गोपनीय तरीके से काम करने को मजबूर होना पड़ा। बहरहाल इंटरनेशनल में अपने घटकों को अखंड संपूर्ण में एकताबद्ध कर लेने की उल्लेखनीय क्षमता थी। अपने जन्म के एकाध साल बाद ही सैकड़ों मज़दूर सभाओं को संघबद्ध करने में इसने सफलता पाई; 1868 के बाद से मिखाइल बाकुनिन (1814-76) के अनुयायियों के प्रचार के चलते स्पेन में अन्य सभाएं जोड़ी गईं और पेरिस कम्यून के बाद इटली, हालैंड, डेनमार्क और पुर्तगाल में इसके प्रभाग पैदा हो गए। बेशक इंटरनेशनल का विकास असमान रहा : कुछ देशों में इसमें वृद्धि हुई जबकि कुछ अन्य देशों में स्थिर रहा या दमन के चलते पीछे हटा। फिर भी जो लोग या संगठन अल्पकाल के लिए भी इंटरनेशनल में शामिल हुए उनमें जुड़ाव का मजबूत अहसास बना रहा। जिन संघर्षों में उन्होंने भाग लिया था जब वे समाप्त हो गए और विपत्ति तथा निजी मुश्किलात के चलते उन्हें दूरी बनानी पड़ी तो भी वर्गीय एकजुटता के बंधन उन्होंने बनाए रखे और जिस संगठन ने जरूरत के वक्त उनका साथ दिया था उसके नाम पर रैली के लिए आवाहन होने, पोस्टर पर लिखे शब्दों या संघर्षों का लाल झंडा फहराने के समय वे जो कर सकते थे करते रहे।

बहरहाल सारे कामगारों का बहुत छोटा हिस्सा ही इंटरनेशनल का सदस्य था। पेरिस में उनकी तादाद कभी दस हजार से अधिक नहीं हुई और रोम, वियेना या बर्लिन जैसी अन्य राजधानियों में तो वे उंगली पर गिने जा सकते थे। एक और पहलू इंटरनेशनल में शामिल मज़दूरों की प्रकृति से जुड़ा हुआ है : इसे मजूरी श्रमिकों का संगठन होना था लेकिन असल में ऐसे बहुत कम श्रमिक इसमें शामिल हुए; मुख्य आमद इंगलैंड के निर्माण मज़दूरों, बेल्जियम के टेक्सटाइल मज़दूरों और फ़्रांस तथा स्विट्ज़रलैंड में भांति भांति के कारीगरों की हुई थी।

ब्रिटेन में इस्पात मज़दूरों को छोड़कर औद्योगिक सर्वहारा के बीच इंटरनेशनल की मौजूदगी हमेशा ही छिटपुट रही। किसी भी देश में औद्योगिक सर्वहारा बहुसंख्यक नहीं हो सका, खासकर दक्षिणी यूरोप में संगठन के विस्तार के बाद तो कम से कम ऐसा ही था। दूसरी बड़ी सीमा यह थी कि पहली कांग्रेस की तैयारी के समय इस दिशा में कोशिश करने के बावजूद अकुशल मज़दूरों को आकर्षित करने में संगठन नाकामयाब रहा था। अस्थायी जनरल कौंसिल के प्रतिनिधियों के लिए जारी निर्देशों में विभिन्न प्रश्न के तहत कहा गया :

> "अपने मूल उद्देश्यों के अलावे ट्रेड यूनियनों को अब मज़दूर वर्ग की संपूर्ण मुक्ति के व्यापक हित में संगठक केंद्र के बतौर सचेत रूप से काम करना सीखना होगा। इस दिशा में प्रवृत्त प्रत्येक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन की उन्हें मदद करनी होगी। अपने आपको समूचे मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधि और हिमायती मानकर उसी तरह से काम करते हुए उन्हें अपनी कतारों में समाज–बाह्य मनुष्यों को शामिल करने से नहीं चूकना चाहिए। असाधारण परिस्थितियों ने जिन्हें शक्तिहीन बना दिया है, मसलन खेतिहर मज़दूर और सबसे कम पगार वाले ऐसे कामगारों के हितों का उन्हें ध्यान रखना होगा। उन्हें व्यापक जगत को समझाना होगा कि उनकी कोशिशें संकीर्ण और स्वार्थ से चालित होने के बदले लाखों पददलित जनगण की मुक्ति की दिशा में लक्षित हैं।"

बहरहाल ब्रिटेन में भी इंटरनेशनल में अकुशल मज़दूर नहीं शामिल हुए, इसका अपवाद खनिक थे। सदस्यों की भारी बहुसंख्या दर्जी, बुनकर, जूता गांठने वाले और बढ़ई थे यानी मज़दूर वर्ग के वे हिस्से जो उस समय सर्वाधिक संगठित और सबसे अधिक वर्ग सचेत थे। अंतिम बात कि इंटरनेशनल रोजगारशुदा मज़दूरों का संगठन रहा; बेरोजगार इसमें कभी शामिल न हो सके। इसके नेताओं की उत्पत्ति में यह बात दिखाई पड़ती है क्योंकि लगभग वे सभी या तो कारीगर थे या बुद्धिजीवी।

इसी तरह इंटरनेशनल के संसाधन भी जटिल थे। कहा जाता था कि इसके पास अकूत संपदा है लेकिन सच्चाई थी कि इसकी आय हमेशा अनिश्चित रही। व्यक्तियों की सदस्यता की फ़ीस एक शिलिंग थी जबकि ट्रेड यूनियनों से अपेक्षा थी कि वे अपने प्रत्येक सदस्य की ओर से तीन पेन्स का चंदा देंगी। बहरहाल अनेक देशों में व्यक्ति सदस्य बिरले ही थे और ब्रिटेन में ट्रेड यूनियनों का योगदान इतना डांवाडोल स्थिति में रहा और बार बार घटाना पड़ता था कि जनरल कौंसिल

को इस तथ्य को स्वीकार करके कहना पड़ा कि उनके लिए जितना संभव हो उतना चुका दें। जो चंदा एकत्र होता वह कभी बीसेक पाउंड सालाना से अधिक न हो सका और उससे महासचिव का चार शिलिंग साप्ताहिक मेहनताना तथा कार्यालय का किराया ही निकलना मुश्किल होता था। कार्यालय का किराया बाकी रह जाने के चलते खाली करने की धमकी बार बार संगठन को झेलनी होती थी।

इंटरनेशनल के एक प्रमुख राजनीतिक-सांगठनिक दस्तावेज में मार्क्स ने इसका कार्यभार कुछ इस तरह बताया : "इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन का काम मज़दूर वर्ग के स्वतःस्फूर्त आंदोलनों का संयोजन और सामान्यीकरण है, निर्देश देना या किसी भी सिद्धांत को थोपना नही।"

अलग अलग संघों और स्थानीय संभागों को प्रदत्त भरपूर स्वायत्तता के बावजूद इंटरनेशनल ने हमेशा ही राजनीतिक नेतृत्व का अधिकार बरकरार रखा। इसकी जनरल कौंसिल विभिन्न प्रवृत्तियों के एकताकारी संश्लेषक निकाय के रूप में काम करती थी और समूचे संगठन के लिए निर्देश जारी करती थी। अक्टूबर 1864 से अगस्त 1872 तक इसकी बैठकें काफी नियमित रहीं, 385 बार उसकी बैठक हुई। पाइप और सिगार के धुएं से भरे कमरे में जनरल कौंसिल के सदस्य मंगलवार की शाम को तमाम किस्म के मुद्दों पर बहस करते। मसलन काम के हालात, नई मशीनरी के असर, हड़तालों का समर्थन, ट्रेड यूनियनों की भूमिका और उनका महत्व, आयरलैंड का सवाल, विदेश नीति के तमाम मुद्दे, और भविष्य का समाज बनाने का तरीका। जनरल कौंसिल ही इंटरनेशनल के दस्तावेज तैयार करने के लिए जिम्मेदार थी : ये दस्तावेज थे–तात्कालिक उद्देश्य से जारी परिपत्र, चिट्ठी और प्रस्ताव; विशेष परिस्थिति के लिए खास घोषणापत्र, वक्तव्य और अपीलें।

4. इंटरनेशनल का निर्माण

इंटरनेशनल के जीवन में प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा मुख्य सांगठनिक पड़ावों के बीच सहकालिकता न होने से इसका इतिहास कालानुक्रम में पुनर्निर्मित करना मुश्किल हो जाता है। सांगठनिक तौर पर प्रमुख पड़ाव थे : 1–इंटरनेशनल का जन्म (1864-66) इसकी स्थापना से पहली कांग्रेस (जेनेवा 1866) तक; 2–विस्तार का समय (1866-70); 3–क्रांतिकारी उभार और पेरिस कम्यून (1871-72) के बाद दमन; 4–विभाजन और संकट (1872-77)। बहरहाल सैद्धांतिक विकास के

लिहाज से प्रमुख पड़ाव थे : 1–इसके विभिन्न घटकों के बीच शुरुआती बहस और इसकी स्थापना (1864-65); 2–समूहवादियों और साझेदारीवादियों के बीच प्रभुत्व का संघर्ष (1866-69); 3–केंद्रवादियों और स्वायत्ततावादियों के बीच टकराव (1870-77)। आगे के पैराग्राफों में सांगठनिक और सैद्धांतिक दोनों पहलुओं को समेटा जाएगा।

ब्रिटेन में सबसे पहले इंटरनेशनल में शामिल होने का आवेदन हुआ; फ़रवरी 1865 में 4000 सदस्यों वाली ओपरेटिव सोसाइटी आफ़ ब्रिकलेयर्स को संबद्धता मिली, इसके बाद जल्दी ही निर्माण मज़दूरों और जूता बनाने वालों के संगठन जुड़े। अपने जीवनकाल के पहले साल में जनरल कौंसिल ने इंटरनेशनल के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए गंभीर गतिविधि शुरू की। इससे शुद्ध आर्थिक सवालों के पार अपना क्षितिज विस्तारित करने में इसे मदद मिली। इसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि फ़रवरी 1965 में स्थापित (चुनाव) सुधार लीग से जुड़े संगठनों में यह भी था।

फ़्रांस में इंटरनेशनल की यात्रा जनवरी 1865 में शुरू हुई जब पेरिस में इसका पहला प्रभाग स्थापित हुआ। ल्योन और सेन में अन्य बड़े केंद्र जल्दी ही प्रकट हुए। लेकिन इसकी ताकत बहुत सीमित रही, फ़्रांस की राजधानी में इसका आधार नहीं बढ़ सका और इस दौरान अनेक अन्य मज़दूर संगठन इससे बड़े बन गए। इंटरनेशनल का वैचारिक प्रभाव बेहद कम था और अन्य ताकतों के साथ इसके संबंध तथा इसकी राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के चलते कोई राष्ट्रीय संघ स्थापित करना भी असंभव हो गया। फिर भी इंटरनेशनल के फ़्रांसिसी समर्थक जो अधिकतर प्रूधों के साझेदारी के सिद्धांतों के अनुयायी थे वे संगठन के पहले सम्मेलन में दूसरे सबसे बड़े समूह के रूप में स्थापित हुए। यह सम्मेलन लंदन में 25 से 29 सितंबर के बीच हुआ था और इसमें इंगलैंड, फ़्रांस, स्विट्ज़रलैंड, और बेल्जियम से 30 प्रतिनिधि शामिल हुए थे, जिनके साथ जर्मनी, पोलैंड और इटली के भी कुछ प्रतिनिधि थे। इनमें से सबने इंटरनेशनल की ओर से खासकर सांगठनिक स्तर पर उठाए गए प्रारम्भिक कदमों के बारे में सूचना दी। इस सम्मेलन ने अगली साल पहली आम कांग्रेस बुलाने का फैसला किया और वहां बहस के लिए प्रस्तावित मुद्दों की सूची बनाई।

इन दोनों जुटानों के बीच इंटरनेशनल का विस्तार यूरोप में जारी रहा तथा बेल्जियम और फ़्रांसिसी भाषी स्विट्ज़रलैंड में इसका पहला महत्वपूर्ण केंद्रक

स्थापित हुआ। संबद्धता संबंधी प्रशियाई कानून दूसरे देशों के संगठनों के साथ जर्मन राजनीतिक संघों के नियमित संपर्क पर प्रतिबंध लगाते थे इसलिए इसका मतलब था कि इंटरनेशनल तत्कालीन जर्मन संघ में कोई संभाग नहीं खोल सकता था। वहां इतिहास की पहली मज़दूर पार्टी जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स की स्थापना 1863 में हुई थी और उसके 5000 सदस्य थे। इसके नेता लासाल के शिष्य योहान्न बैप्टिस्ट फान श्वाइट्ज़र (1833-75) ओट्टो फान बिस्मार्क (1815-98) के साथ दुविधापूर्ण संवाद बनाए हुए थे और उन्होंने इंटरनेशनल के जीवन के शुरुआती सालों में इसमें कोई खास रुचि नहीं ली। ऐसी ही उदासीनता मार्क्स से राजनीतिक निकटता के बावजूद विलहेल्म लीबक्नेख्त (1826-90) ने भी दिखाई। स्विट्ज़रलैंड में इंटरनेशनल के प्रमुख नेताओं में से एक योहान्न फिलिप बेकर (1809-86) ने जेनेवा आधारित 'ग्रुप आफ़ जर्मन स्पीकिंग सेक्शंस' के जरिए इन कठिनाइयों के बीच रास्ता निकालने की कोशिश की और लंबे दिनों तक जर्मन संघ में वे ही शुरुआती इंटरनेशनल केंद्रक के संगठक रहे।

इस अग्रगति को इंटरनेशनल के विचारों के साथ सहानुभूति रखने वाले अखबारों या जनरल कौंसिल के सच्चे मुखपत्रों के प्रसार से बहुत समर्थन मिला। इन दोनों से वर्गीय चेतना के विकास में योगदान मिला और इंटरनेशनल की गतिविधि के समाचार तेजी से प्रचारित हुए। इसके जीवन के पहले कुछ सालों में जो अखबार निकले उनमें साप्ताहिक बी-हाइव और द माइनर ऐंड वर्कमैन'स एडवोकेट (बाद में द वर्कमैन'स एडवोकेट और फिर द कामनवेल्थ), दोनों लंदन से प्रकाशित; फ़्रांसिसी साप्ताहिक ल कूरिए इंतरनेशनल, लंदन से ही प्रकाशित; अगस्त 1865 से बेल्जियम में इंटरनेशनल का आधिकारिक पत्र ल त्रिब्यून द्यू पीपुल, स्विट्ज़रलैंड के फ़्रांसिसी भाषी संभाग का मुखपत्र जर्नल द लासोशिएं इंतरनेशनल; पेरिस से प्रकाशित प्रूधोंपंथी साप्ताहिक ल कूरिएं फ़्रांसुआं और जेनेवा में बेकर का डेर फ़ोरबोटे खास थे।

इंटरनेशनल के और अधिक सुदृढ़ीकरण के लिए लंदन में जनरल कौंसिल की गतिविधि निर्णायक थी। 1866 के वसंत में लंदन अमेल्गमेटेड टेलर्स की हड़ताल का समर्थन करके इसने पहली बार मज़दूरों के किसी संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाई जिसमें मिली सफलता के चलते दर्जियों की पांच सोसाइटियों ने इंटरनेशनल से जुड़ने का फैसला किया जिनमें प्रत्येक की सदस्य संख्या लगभग 500 थी। कुछ अन्य विवादों के सकारात्मक निपटारे के कारण ढेर सारी छोटी यूनियनें भी

आकर्षित हुईं। नतीजा यह निकला कि इसकी पहली कांग्रेस के समय तक सत्रह यूनियनें इससे संबद्ध हो चुकी थीं जिससे 25000 से अधिक नए सदस्य भर्ती हुए। इंटरनेशनल पहला ऐसा एसोसिएशन बना जो अपनी कतारों में ट्रेड यूनियन संगठनों को शरीक करने का कठिन काम पूरा कर सका।

जेनेवा शहर में 3 से 8 सितंबर तक इंटरनेशनल की पहली कांग्रेस संपन्न हुई। इसमें ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड से 60 प्रतिनिधि शरीक हुए थे। इंटरनेशनल के पास स्थापना के बाद दो सालों में गर्व करने लायक उपलब्धियों की फ़ेहरिस्त थी। इसने अपने झंडे तले 100 से अधिक ट्रेड यूनियनों और संगठनों को एकत्र कर लिया था। कांग्रेस में भाग ले रहे लोग मूल तौर पर दो खेमों में बांटे जा सकते थे। पहले खेमे में ब्रिटेन के प्रतिनिधि, कुछ जर्मन और ज्यादातर स्विस थे जो मार्क्स (जो जेनेवा में नहीं थे) द्वारा लिखित जनरल कौंसिल के निर्देशों पर अमल करते थे। दूसरा खेमा साझेदारीवादियों का था जिनमें फ़्रांसिसी प्रतिनिधि और कुछ फ़्रांसिसी भाषी स्विस थे। असल में उस समय इंटरनेशनल में यह रुख बहुत प्रचलित था और पेरिस निवासी हेनरी तोलें (1828-97) के नेतृत्व में साझेदारीवादियों ने ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत की जिसमें कामगार एक ही साथ उत्पादक, पूंजीपति और उपभोक्ता होगा। वे सामाजिक रूपांतरण का निर्णायक उपाय ब्याज रहित ऋण प्रदान करना मानते थे; स्त्री श्रम को नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से आपत्तिजनक समझते थे और काम के रिश्तों में किसी भी सरकारी हस्तक्षेप (काम के 8 घंटे तय करने सहित) का विरोध करते थे। इसका कारण वे यह बताते थे कि ऐसा होने से मज़दूरों और मालिकों के बीच के निजी रिश्तों पर खतरा पैदा होगा तथा वर्तमान व्यवस्था मजबूत होगी।

मार्क्स द्वारा तैयार प्रस्तावों के आधार पर जनरल कौंसिल के नेताओं ने कांग्रेस में संख्या के मामले में मजबूत साझेदारीवादियों के खेमे को शिकस्त देने में सफलता हासिल की और राजकीय हस्तक्षेप के पक्ष में बहुमत हासिल कर लिया। इस मुद्दे पर अस्थायी जनरल कौंसिल के प्रतिनिधियों के लिए निर्देश में 'किशोर और बाल श्रमिक (स्त्री पुरुष दोनों)' से जुड़े हुए अंश में मार्क्स ने साफ साफ लिखा था :

> "इसे तभी लागू किया जा सकता है जब सामाजिक विवेक को सामाजिक शक्ति में बदला जाए और वर्तमान स्थितियों में ऐसे आम कानून के सहारे इसे करने के सिवा अन्य कोई तरीका नहीं है जिस कानून को राज्य की शक्ति से मनवाया

जाएगा। ऐसे कानूनों को लागू करवाने में मज़दूर वर्ग सरकार की ताकत बढ़ा नहीं रहा होगा। इसके विपरीत जो ताकत इस समय उसके विरुद्ध इस्तेमाल होती है, उसे ही अपने अभिकरण के बतौर रूपांतरित करेगा। जिस चीज को वे ढेर सारे बिखरे हुए निजी प्रयासों के जरिए हासिल करने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं उसे ही आम कानून के जरिए हासिल कर लेंगे।"

इस प्रकार बुर्जुआ समाज को मजबूत करने की बजाय (जैसा गलती से प्रूधों और उनके अनुयायी यकीन करते थे) ये सुधारात्मक मांगें मज़दूर वर्ग की मुक्ति का अपरिहार्य आरम्भिक कदम थीं।

इससे भी आगे, जेनेवा कांग्रेस के लिए लिखे मार्क्स के 'निर्देश' ट्रेड यूनियनों की बुनियादी भूमिका पर जोर दे रहे थे जिन ट्रेड यूनियनों का विरोध न केवल साझेदारीवादी बल्कि ब्रिटेन में राबर्ट ओवेन (1771-1885) के और जर्मनी में लासाल के कुछ अनुयायी करते थे :

"ट्रेड यूनियनों की यह गतिविधि न केवल उचित है, बल्कि जरूरी है। जब तक वर्तमान उत्पादन प्रणाली मौजूद है तब तक इसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसके बरक्स सभी देशों में ट्रेड यूनियनों के निर्माण और संश्रय के जरिए इसे आम प्रवृत्ति बना देना होगा। दूसरी ओर अनजाने ही ट्रेड यूनियनें मज़दूर वर्ग के लिए संगठन केंद्र उसी तरह स्थापित कर रही थीं जिस तरह मध्ययुगीन म्युनिसपलिटियों तथा कम्यूनों ने पूंजीपति वर्ग के लिए संगठन केंद्र स्थापित किए थे। यदि ट्रेड यूनियनों की पूंजी तथा श्रम के बीच छापामार लड़ाई के लिए जरूरत पड़ती है तो वे संगठित शक्ति के रूप में मजूरी श्रम और पूंजी के शासन की व्यवस्था को समाप्त करने के लिए और भी महत्वपूर्ण हैं।"

इसी दस्तावेज में मार्क्स वर्तमान यूनियनों की आलोचना करने से भी नहीं चूके। क्योंकि वे

"पूंजी के विरुद्ध स्थानीय तथा तात्कालिक संघर्षों में ही खास तौर पर व्यस्त रहती हैं और इसलिए मजूरी गुलामी की व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने की अपनी ताकत को खुद ही अब तक पहचान नहीं सकी हैं। इसलिए उन्होंने अपने को आम सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों से बहुत दूर रखा है।"

ठीक एक साल पहले भी उन्होंने 20 और 27 जून को जनरल कौंसिल के समक्ष अपने भाषण में यही बातें कही थीं जो मरणोपरांत 'मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा' शीर्षक से छपा :

"मज़दूर वर्ग को इन रोजमर्रा के संघर्षों के अंतिम नतीजों को बढ़ा चढ़ाकर नहीं आंकना चाहिए। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे परिणामों से लड़ रहे हैं, न कि उन परिणामों के कारणों से; कि वे पतन की गति को सिर्फ़ रोक रहे हैं, उसकी दिशा नहीं बदल रहे हैं; कि वे दर्द निवारक का इस्तेमाल कर रहे हैं, रोग का नाश नहीं कर रहे हैं। इसलिए उन्हें पूंजी के निरंतर आक्रमणों या बाजार के परिवर्तनों के कारण लगातार पैदा होने वाले अपरिहार्य गुरिल्ला संघर्षों में फंसकर नहीं रह जाना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि मौजूदा व्यवस्था मज़दूरों पर ढाई जाने वाली तमाम मुसीबतों को पैदा करने के साथ ही समाज के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक रूपों को भी उत्पन्न करती है। इसलिए मज़दूरों को अपने झंडे पर 'वाजिब काम की वाजिब मज़दूरी' जैसे रूढ़ नारे की जगह यह क्रांतिकारी नारा लिख लेना चाहिए 'मजूरी व्यवस्था का नाश हो'।"

5. बढ़ती ताकत

1866 के उत्तरार्ध के बाद अनेक यूरोपीय देशों में हड़तालों में तेजी आई। मज़दूरों की भारी संख्या द्वारा संगठित इन हड़तालों ने उनमें अपने हालात की चेतना को जन्म दिया और संघर्षों की नई और महत्वपूर्ण लहर पैदा हुई।

हालांकि उस समय की कुछ सरकारों ने जन विक्षोभ के लिए इंटरनेशनल को दोषी ठहराया लेकिन उनमें शामिल अधिकांश मज़दूरों को इसके अस्तित्व के बारे में भी पता नहीं था; उनके विरोध प्रदर्शनों का मूल कारण काम और जीवन के कठिन हलात थे जिन्हें सहने के लिए वे मजबूर थे। फिर भी इन गोलबंदियों ने इंटरनेशनल के साथ सम्पर्क और संयोजन के नए दौर को जन्म दिया क्योंकि उसने एकजुटता की घोषणा और आवाहन के जरिए उनका समर्थन किया, हड़तालियों के लिए चंदा जुटाया और मालिकों द्वारा मज़दूरों के प्रतिरोध को कमजोर करने की कोशिशों का जवाब देने में मदद की।

इस दौर में इंटरनेशनल की व्यावहारिक भूमिका के चलते मज़दूरों ने उसे अपने हितों की रक्षा करने वाले संगठन के बतौर मानना शुरू किया और कुछेक मामलों में उससे जुड़ने की मांग की। इसके समर्थन से फ़रवरी-मार्च 1867 की पेरिस के तांबा मज़दूरों की हड़ताल में पहली जीत मिली। इसके साथ ही फ़रवरी 1867 में मार्शिएन के इस्पात मज़दूरों की हड़ताल, अप्रैल 1867 से फ़रवरी 1868

तक चलने वाला प्रोवेन्काल खनिज बेसिन का लंबा विवाद, 1868 के वसंत में चार्लेरोइ खनिकों की हड़ताल और जेनेवा के निर्माण मज़दूरों की हड़ताल भी सफल रहे। इन सभी घटनाओं में स्थिति एक समान ही रही : दूसरे देश के मज़दूरों ने हड़तालियों के समर्थन में चंदा जुटाया तथा उनके बदले में काम न करने का संकल्प किया अन्यथा वे भाड़े के औद्योगिक हत्यारे बन गए होते। इसके कारण मालिकों को हड़तालियों की अनेक मांगों पर समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ा। जो नगर कार्यवाही का केंद्र बने वहां इंटरनेशनल के सैकड़ों नए सदस्य भर्ती हुए। बाद में जनरल कौंसिल की एक रपट में कहा गया : 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन ने लोगों को हड़ताल में नहीं धकेला, बल्कि हड़तालों ने ही मज़दूरों को इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन की ओर ठेल दिया।'

इस तरह राष्ट्रीयता, भाषा और राजनीतिक संस्कृति संबंधी विविधताओं से जुड़ी हुई तमाम दिक्कतों के बावजूद इंटरनेशनल ने नाना प्रकार के संगठनों और स्वतःस्फूर्त संघर्षों के साथ एकता और संयोजन हासिल करने में सफलता पाई। इसका सबसे बड़ा गुण यह था कि इसने शुरुआती उद्देश्यों और रणनीतियों की आंशिकता से निर्णायक तौर पर परे जाकर वर्गीय एकजुटता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की जरूरत को जाहिर कर दिया।

1867 के बाद से ही इन लक्ष्यों को हासिल करने की सफलता से प्राप्त मजबूती तथा व्यापक सदस्यता और अधिक सक्षम संगठन के बल पर इंटरनेशनल ने समूचे यूरोपीय महाद्वीप में अग्रगति बढ़ा दी। खासकर फ़्रांस में तो यह गतिरोध भंग का साल रहा जहां तांबा मज़दूरों की हड़ताल का वैसा ही उत्प्रेरक प्रभाव पड़ा जैसा प्रभाव इंगलैंड में दर्जियों की हड़ताल का पड़ा था। पेरिस में सदस्यों की संख्या 1000 के करीब पहुंच गई और ल्यों तथा विएन में सदस्य संख्या 500 के पार हो गई। भूमध्य सागर के दक्षिणी तट पर अल्जीयर्स (बहरहाल जिसमें केवल फ़्रांसिसी मज़दूर थे) समेत सात नए प्रभाग स्थापित हुए। बेल्जियम में भी हड़तालों के बाद संबद्धता में बढ़ोत्तरी आई तथा इसी तरह स्विट्ज़रलैंड में भी मज़दूरों की लीगों, सहकारी समितियों और राजनीतिक सोसाइटियों ने उत्साह के साथ जुड़ाव का आवेदन किया। अब इंटरनेशनल के केवल जेनेवा में 25 प्रभाग थे जिनमें जर्मन भाषी लोगों का वह प्रभाग भी था जो जर्मन संघ के मज़दूरों में प्रचार के लिए आधार का काम करता था।

लेकिन अब भी ब्रिटेन में ही इंटरनेशनल की उपस्थिति सबसे अधिक थी। 1867 के दौरान दर्जनों अन्य संगठनों की संबद्धता के चलते सदस्यता का आंकड़ा अच्छा खासा 50000 तक चला गया–ध्यान रखें कि सिर्फ़ दो साल में इसे हासिल किया गया था जबकि उस समय यूनियनों में संगठित मज़दूरों की कुल तादाद लगभग 800000 रही होगी। किसी भी अन्य देश में इंटरनेशनल की सदस्यता यह स्तर कभी नहीं छू सकी (अगर आबादी के अनुपात में नहीं तो संख्या के मामले में जरूर ही)। बहरहाल 1864-67 की चढ़ान के विपरीत बाद के सालों में ब्रिटेन में एक किस्म का ठहराव कायम रहा। इसकी ढेर सारी वजहें थीं लेकिन मुख्य वजह थी कि, जैसा हमने पहले देखा, इंटरनेशनल फ़ैक्ट्री उद्योगों या अकुशल श्रमिकों की दुनिया में पैठ नहीं बना सका। अकुशल श्रमिकों में एकमात्र अपवाद यूनाइटेड एक्सकेवेटर्स थे जिन्होंने अगस्त 1866 की हड़ताल के बाद संबद्धता ग्रहण की, जबकि उत्तरी और मध्यदेश के बड़े कारखानों में से सदस्यता लेने वाले बिरले संगठनों में से एक मेलेबल आयरनवर्कर्स था। इंटरनेशनल की आवाज न तो कोयला और सूती वस्त्र उद्योगों तक पहुंची, न ही इंजीनियरिंग के मज़दूर इससे जुड़े (जिन्होंने अपने तकनीकी कौशल के चलते कभी विदेशी प्रतियोगिता का खतरा महसूस नहीं किया)। इंटरनेशनल से सबसे अधिक तादाद में निर्माण मज़दूर जुड़े। 9000 सदस्यों वाली अमल्गेमेटेड सोसाइटी आफ़ कारपेंटर्स ऐंड ज्वाइनर्स के सचिव राबर्ट एपलग्राथ (1834-1924) जनरल कौंसिल के सदस्य थे और इसकी कुल सदस्यता के पांचवें हिस्से का प्रतिनिधित्व करते थे। इसके बाद दर्जी, मोची, बढ़ई, जिल्दसाज, फीता बुनकर, जाल बुनकर, जीनसाज और सिगार बनाने वाले थे–संक्षेप में ऐसे सभी व्यवसायों से जुड़े लोग जिनमें औद्योगिक क्रांति से खास बदलाव नहीं आया था। जनवरी 1867 में लंदन ट्रेड्स कौंसिल ने इंटरनेशनल के साथ सहयोग करने का फैसला किया लेकिन संबद्धता नहीं ग्रहण की। इससे जनरल कौंसिल को अहसास हो गया कि इसका विस्तार मौजूदा प्रभाव क्षेत्र के बाहर नहीं हो सकता।

मज़दूर आंदोलन के बढ़ते संस्थानीकरण ने इंटरनेशनल के जीवन की इस धीमी रफ़्तार में और भी इजाफा किया। रिफ़ार्म लीग के साथ लड़ी गई लड़ाई के चलते बने रिफ़ार्म ऐक्ट के कारण दस लाख से अधिक मज़दूरों को मताधिकार मिला। इसके बाद ट्रेड यूनियनों को कानूनी दर्जा मिल गया जिससे उत्पीड़न और दमन का खतरा खत्म हुआ तथा इससे समाज में इस चौथे खम्भे की असली मौजूदगी का अहसास होने लगा। नतीजा यह निकला कि देश के परिणामवादी

नेताओं ने सुधार के रास्ते पर चलना जारी रखा। मज़दूर वर्ग में अपने फ़्रांसिसी भाइयों के विपरीत शासन के साथ जुड़ाव का बोध गहराता गया क्योंकि उन्होंने भविष्य की अपनी ज्यादातर आशा शांतिपूर्ण बदलाव के साथ जोड़ दी। शेष महाद्वीप में हालात सचमुच बहुत अलग थे। जर्मन संघ में मज़दूरी के सवाल पर सामूहिक सौदेबाजी का सवाल ही नहीं था। बेल्जियम में हड़तालों को सरकार युद्ध की कार्यवाही मानकर कुचलती थी। हड़तालें स्विट्ज़रलैंड में तो अपवाद ही थीं जिन्हें बर्दाश्त करना स्थापित व्यवस्था के लिए मुश्किल था। फ़्रांस में घोषणा हुई थी कि 1864 से हड़तालें कानूनी हैं लेकिन आरम्भिक मज़दूर यूनियनों को कठोर प्रतिबंधों के तहत ही काम करना पड़ता था।

1867 की कांग्रेस की यही पृष्ठभूमि थी जिसमें व्यापक आधार पर निरंतर विस्तार से हासिल नई ताकत के साथ इंटरनेशनल एकत्र हुई। 'द टाइम्स' समेत कुछ पूंजीवादी अखबारों ने इसकी कार्यवाही देखने के लिए संवाददाता भेजे। कांग्रेस 2 से 8 सितंबर तक फिर से एक स्विस नगर लूसान में हुई। इसमें छह देशों से 64 प्रतिनिधि शामिल हुए (इनमें बेल्जियम और इटली से एक एक प्रतिनिधि भी थे)। चूंकि मार्क्स कैपिटल के प्रूफ़ देखने में व्यस्त थे इसलिए तैयारी के लिए लिखे दस्तावेजों के समय जनरल कौंसिल की बैठकों में और कांग्रेस में भी अनुपस्थित रहे। इसका असर साफ साफ महसूस किया गया जिसकी पुष्टि विभिन्न देशों में बढ़ोत्तरी की नीरस रपटों पर कांग्रेस का ध्यान केंद्रित रहने से होती है। इसके साथ ही प्रतिनिधियों की बहुसंख्या के साझेदारीवादी होने के चलते उनके पसंदीदा प्रूधोंपंथी विषयों (मसलन सहकारी आंदोलन और कर्ज का वैकल्पिक उपयोग) पर ज्यादा बातें हुईं।

इसके अलावे लीग फ़ार पीस ऐंड फ़्रीडम, जिसका स्थापना सम्मेलन इसके तुरंत बाद होने वाला था, के अनुरोध पर युद्ध और सैन्यवाद के सवाल पर भी बातचीत हुई। बहस के दौरान ही इंटरनेशनल के सर्वाधिक सक्रिय और प्रतिभाशाली सिद्धांतकारों में से एक ब्रसेल्स के प्रतिनिधि सेजार डि पाएपे (1841-90) ने वह सूत्र प्रस्तुत किया जो बाद में युद्ध के बारे में मज़दूर आंदोलन का शास्त्रीय मत बन गया कि 'पूंजीवादी व्यवस्था में युद्ध अपरिहार्य हैं'।

"अगर जेनेवा (शांति) कांग्रेस के लिए मुझे अपनी भावनाएं व्यक्त करनी हों तो कहूंगा : हम भी शांति से उतनी ही मुहब्बत करते हैं जितनी आप लेकिन हम जानते हैं कि जब तक राष्ट्रीयता या देशभक्ति का सिद्धांत मौजूद है, युद्ध होंगे; जब

तक अलग अलग वर्ग हैं, युद्ध होंगे। युद्ध महज किसी बादशाह की महात्वाकांक्षा का परिणाम नहीं होता.....युद्ध की असली वजह कुछ पूंजीपतियों के हित हैं। युद्ध आर्थिक जगत में असंतुलन का और राजनीतिक दुनिया में संतुलन के अभाव का परिणाम होते हैं।"

अंतिम बात कि स्त्री मुक्ति के सवाल पर बहस हुई और कांग्रेस ने एक रिपोर्ट के पक्ष में मतदान किया जिसमें कहा गया था कि 'यातायात और परिचालन के साधनों पर राजकीय स्वामित्व स्थापित करना विभिन्न देशों की कोशिशों का लक्ष्य होना चाहिए'। इंटरनेशनल की किसी कांग्रेस में अनुमोदित यह पहली समूहवादी घोषणा थी। बहरहाल साझेदारीवादी भू-स्वामित्व के समाजीकरण के पूरी तरह से विरोध में रहे और इस सवाल पर गहराई से बहस को अगली कांग्रेस तक के लिए टाल दिया गया।

6. प्रूधोंपंथियों की पराजय

इंटरनेशनल के एकदम शुरू के ही दिनों से फ़्रांस में, फ़्रांसिसी भाषी स्विट्ज़रलैंड में, वालोनिया में और ब्रसेल्स नगर में प्रूधों के विचारों का दबदबा था। उनके अनुयायियों, खासकर तोलें और अर्नेस्ट एडुवार्ड फ्रिबोर्ग (अज्ञात) ने 1864 की स्थापना बैठक, 1865 के लंदन सम्मेलन, जेनेवा और लूसान की कांग्रेसों में अपने विचारों के चलते छाप छोड़ी थी।

4 सालों तक ये साझेदारीवादी इंटरनेशनल के सर्वाधिक नरमदली रहे। संगठन में बहुमत वाली ब्रिटिश ट्रेड यूनियनें भी मार्क्स के पूंजीवाद विरोध से सहमत नहीं थीं लेकिन संगठन की नीतियों पर उनका वैसा प्रभाव नहीं था जैसा प्रभाव डालने में प्रूधों के अनुयायी सक्षम थे।

इस फ़्रांसिसी अराजकतावादी के सिद्धांतों के आधार पर साझेदारीवादियों का कहना था कि मज़दूरों की आर्थिक मुक्ति, उत्पादक सहकारी समितियों और जनता का एक केंद्रीय बैंक स्थापित करके हासिल की जा सकती है। किसी भी क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप के प्रचंड विरोधी ये लोग जमीन और उत्पादन के साधनों के समाजीकरण का विरोध करने के साथ ही हथियार के रूप में हड़ताल के प्रयोग के भी विरोधी थे। उदाहरण के लिए 1868 में भी इंटरनेशनल के कई प्रभाग संघर्ष के इस रूप को नकारात्मक और अर्थतंत्र विरोधी मानते थे। इस मामले में हड़तालों

के बारे में लीग प्रभाग की रिपोर्ट प्रतीकात्मक थी : 'हड़ताल एक संघर्ष है। इसीलिए यह जनता और पूंजीपति वर्ग के बीच खदबदाती हुई नफ़रत को बढ़ा देती है। जिन दो वर्गों को एक दूसरे के साथ घुलना मिलना और एकताबद्ध होना चाहिए उन्हें एक दूसरे से और दूर ले जाती है।' जनरल कौंसिल की समझ और थीसिस से इससे अधिक दूरी शायद ही हो सकती थी।

बिना शक मार्क्स ने इंटरनेशनल में प्रूधों का प्रभाव घटाने के लिए चले लंबे संघर्ष में मुख्य भूमिका निभाई। इसके नेताओं के सैद्धांतिक विकास के लिए उनके विचार बुनियाद की तरह काम करते थे और संगठन के भीतर हरेक निर्णायक टकराव में जीत हासिल करके इन विचारों को बुलंद रखने की अद्‌भुत क्षमता का उन्होंने प्रदर्शन किया। उदाहरण के लिए सहकारिता के सिलसिले में उन्होंने 1866 में अस्थायी जनरल कौंसिल के प्रतिनिधियों के लिए निर्देश, विभिन्न प्रश्न में उन्होंने पहले ही घोषित किया :

> "सामाजिक उत्पादन को मुक्त तथा सहकारी श्रम की एक बड़ी तथा सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था में बदलने के लिए आम सामाजिक परिवर्तनों की, समाज की सामान्य परिस्थितियों में बदलाव की जरूरत पड़ती है जिसे पूंजीपतियों तथा जमींदारों से छीनकर खुद उत्पादकों को, समाज की संगठित ताकतों को, यानी राजकीय सत्ता को सौंपे बिना कभी मूर्त नहीं किया जा सकता है।"

उन्होंने मज़दूरों को सलाह दी कि "वे सहकारी स्टोर की बजाय सहकारी उत्पादन पर ध्यान दें। सहकारी स्टोर वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की सतह को ही छूता है जबकि सहकारी उत्पादन इसकी जड़ पर चोट करता है।" बहरहाल मज़दूर खुद ही प्रूधोंपंथी सिद्धांतों से परे हट रहे थे। सबसे आगे बढ़कर हड़तालों की बाढ़ ने साझेदारीवादियों की धारणा की गलती का उन्हें यकीन दिला दिया। सर्वहारा वर्ग के संघर्षों ने दिखा दिया कि हड़तालें वर्तमान हालात में सुधार के तात्कालिक साधन के बतौर तो जरूरी हैं ही, भविष्य के समाज निर्माण के लिए आवश्यक वर्गीय चेतना को भी मजबूत बनाती हैं। जीते जागते वास्तविक स्त्री-पुरुषों ने अपने अधिकारों और सामाजिक न्याय की मांग के लिए पूंजीवादी उत्पादन को रोक दिया और इस तरह इंटरनेशनल में तथा समूचे समाज में भी शक्ति संतुलन को बदल दिया। किसी भी सैद्धांतिक बहस के मुकाबले अधिक जोरदार तरीके से पेरिस के तांबा मज़दूरों, रूएं और ल्यों के बुनकरों तथा सेंट एटीन के कोयला खनिकों ने इंटरनेशनल के फ़्रांसिसी नेताओं को जमीन और उद्योगों के समाजीकरण

की जरूरत समझा दी। और मज़दूरों के आंदोलन ने दिखा दिया कि प्रूधों की मान्यताओं के विपरीत समाजार्थिक सवालों को राजनीतिक सवाल से अलगाया नहीं जा सकता।

1868 में 6 से 13 सितंबर तक ब्रसेल्स कांग्रेस संपन्न हुई। इसमें फ़्रांस, ब्रिटेन, स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, स्पेन (1 प्रतिनिधि) और बेल्जियम (पचपन) से कुल 99 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसी में अंतिम तौर पर साझेदारीवादियों के पंख कतर दिए गए। सबसे महत्वपूर्ण क्षण तब आया जब सदन ने उत्पादन के साधनों के समाजीकरण संबंधी डी पाएपे के प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया—इसके जरिए समाजवाद के आर्थिक आधार को परिभाषित करने के मामले में निर्णायक कदम आगे बढ़ाया गया। यह काम महज कुछ बुद्धिजीवियों के लेखन में नहीं हुआ था बल्कि एक महान अंतर्राष्ट्रीय संगठन के कार्यक्रम में इसे अपनाया गया था। खदानों और परिवहन के बारे में कांग्रेस ने घोषणा की :

1. कोयला खानें, अन्य खानें और खदानें तथा रेलवे सामान्य सामाजिक हालात में समुदाय की संपदा होने चाहिए, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य करता है, उस राज्य को भी न्याय के कानून के अधीन होना चाहिए।
2. कोयला खानें, अन्य खानें और खदानें तथा रेलवे को राज्य वर्तमान व्यवस्था की तरह पूंजीपतियों की कंपनियों को नहीं, बल्कि कामगारों की कंपनियों को संचालन हेतु देगा जो अनुबंध के तहत समाज के लिए रेलवे आदि के तार्किक और वैज्ञानिक संचालन की गारंटी करेंगी और वह भी उस कीमत पर जो कामचलाऊ खर्च के जितना भी संभव हो उतना करीब हो। इसी अनुबंध के तहत राज्य के पास कंपनी का लेखा जोखा जांचने का भी अधिकार सुरक्षित होगा ताकि वह इजारेदारी के पुनर्गठन की किसी भी संभावना को देख सके। एक अन्य अनुबंध के जरिए कंपनियों के प्रत्येक सदस्य और उनके कामगारों के बीच आपसी अधिकारों की गारंटी होनी चाहिए।

भू-संपत्ति के मामले पर सहमति बनी कि :

"आधुनिक समाज के आर्थिक विकास के चलते खेती लायक जमीन को समाज की साझा संपत्ति में बदलने की सामाजिक आवश्यकता पैदा होगी, तथा राज्य की ओर से जमीन को भी कृषि कंपनियों को खानों और रेलवे के मामले में बताई गई शर्तों के अनुरूप शर्तों पर ही दिया जाएगा।"

नहरों, सड़कों और टेलीग्राफ पर भी यही बातें लागू होंगी :

"यह मानते हुए कि सड़कों और संचार के अन्य साधनों को भी साझी सामाजिक दिशा की जरूरत है कांग्रेस समझती है कि उन्हें भी समाज की साझा संपत्ति होना चाहिए।"

अंत में पर्यावरण के बारे में कुछ मजेदार बातें कही गईं :

"यह मानते हुए कि निजी हाथों में जंगलों को छोड़ देने से पेड़ों का विनाश होता है जो वसंत की संरक्षा के लिए और उसी क्रम में जमीन की उत्तम गुणवत्ता के लिए तथा साथ ही आबादी के स्वास्थ्य और जीवन के लिए जरूरी होते हैं, कांग्रेस समझती है कि जंगलों को समाज की साझा संपत्ति होना चाहिए।"

इस प्रकार ब्रसेल्स में इंटरनेशनल ने राजकीय प्राधिकार द्वारा उत्पादन के साधनों के समाजीकरण के बारे में पहली बार स्पष्ट वक्तव्य दिया। जनरल कौंसिल की यह महत्वपूर्ण जीत थी और एक बड़े मज़दूर संगठन के राजनीतिक कार्यक्रम में पहली बार समाजवादी सिद्धांत प्रकट हुए।

इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने फिर से युद्ध के सवाल पर बहस की। बेकर ने एक प्रस्ताव पेश किया जिसे संक्षेप में मार्क्स ने बाद में कांग्रेस के प्रकाशित प्रस्तावों में शामिल भी किया, उसमें कहा गया :

"सभी युद्धों को खत्म करने में केवल मज़दूरों का स्पष्टतः तार्किक हित है, और यह हित आर्थिक और राजनीतिक, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय है क्योंकि आखिरकार उन्हें ही अपने खून और मेहनत से लड़ने वालों के बीच जीत हार की कीमत चुकानी पड़ती है, चाहे वे जीतने वालों के देश के हों या हारने वालों के देश के।"

मज़दूरों का आवाहन किया गया कि वे सभी युद्धों को 'गृहयुद्ध' मानें। डी पाएपे ने इसके विरोध के लिए आम हड़ताल के इस्तेमाल की भी सलाह दी जिस प्रस्ताव को मार्क्स ने 'बेवकूफी' कहकर खारिज कर दिया लेकिन असल में जिसका मकसद ऐसी वर्ग चेतना को जन्म देना था जो केवल आर्थिक संघर्षों के परे जाने में सक्षम हो।

इंटरनेशनल का समूहवादी रुझान अगर ब्रसेल्स कांग्रेस से शुरू हुआ था तो अगले साल 5 से 12 सितंबर तक संपन्न बासेल कांग्रेस ने इसे और ठोस रूप दिया और प्रूधोंपंथ को उसके घरेलू मोर्चे फ़्रांस से भी उखाड़ फेंका। इस बार कांग्रेस में

प्रतिनिधियों की संख्या 78 थी जो केवल फ़्रांस, स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, ब्रिटेन और बेल्जियम से ही नहीं आए थे बल्कि विस्तार का प्रमाण देते हुए स्पेन, इटली और आस्ट्रिया से तथा अमेरिका से नेशनल लेबर यूनियन का भी एक प्रतिनिधि मौजूद थे। इस प्रतिनिधि तथा विलहेल्म लीबक्नेख्त (1826-1900) की मौजूदगी ने कांग्रेस को और शानदार बना दिया तथा इसमें आशा भर दी। लीबक्नेख्त मज़दूर वर्ग की पहली संगठित राजनीतिक शक्तियों के प्रतिनिधि थे (कुछ ही हफ़्ते पहले आइजेनबाख में स्थापित सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी आफ़ जर्मनी की ओर से)। इंटरनेशनल द्वारा पूंजी की सत्ता को चुनौती देने के लिए आवश्यक आधार क्षेत्र का साफ तौर पर विस्तार हो रहा था और कार्यवाही के दस्तावेजों तथा गतिविधियों के बारे में कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत आम रिपोर्टों से उपस्थित मज़दूरों में उत्साह का संचार हुआ।

भू-संपत्ति के बारे में ब्रसेल्स कांग्रेस के प्रस्तावों की फिर से पुष्टि की गई, पक्ष में 54, विपक्ष में 4 वोट पड़े और 13 प्रतिनिधियों ने मतदान में भाग नहीं लिया। फ़्रांसिसी प्रतिनिधियों में से यूजीन वार्लिन (1838-71) समेत, जो बाद में पेरिस कम्यून के प्रमुख व्यक्तित्व बने, ग्यारह ने एक नए पाठ का भी अनुमोदन किया जिसमें घोषित था 'कि समाज को अधिकार है कि वह जमीन का निजी मालिकाना खत्म कर दे और इसे समुदाय की संपत्ति बना दे।' इस पर दस प्रतिनिधि मतदान से अनुपस्थित रहे चार (तोलें समेत) ने विरोध में वोट दिया। बासेल के बाद फ़्रांस में इंटरनेशनल साझेदारीवादी नहीं रही।

बासेल कांग्रेस इस मामले में भी मजेदार थी कि मिखाइल बाकुनिन ने प्रतिनिधि के बतौर कार्यवाही में भाग लिया। लीग फ़ार पीस ऐंड फ्रीडम का नेतृत्व हासिल करने में नाकाम होने के बाद बाकुनिन ने जेनेवा में सितंबर 1868 में इंटरनेशनल एलायंस फ़ार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी की स्थापना की और दिसंबर में इसने इंटरनेशनल में शामिल होने का आवेदन किया। शुरू में जनरल कौंसिल ने इसको खारिज कर दिया। कारण यह बताया कि इंटरनेशनल एलायंस फ़ार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी अब भी एक अन्य समानांतर अंतर्राष्ट्रीय ढांचे से जुड़ा हुआ है और इसका एक लक्ष्य 'वर्गों में बराबरी' इंटरनेशनल के आधार स्तम्भ वर्ग उन्मूलन से पूरी तरह से भिन्न है। बहरहाल कुछ ही दिनों बाद एलायंस ने अपने कार्यक्रम में सुधार कर लिया और प्रभागों का अपना जाल बंद करने के लिए भी राजी हो गया जिनमें से अनेक वैसे भी सिर्फ़ बाकुनिन की कल्पना में मौजूद थे।

28 जुलाई 1869 को तदनुसार 104 सदस्यों वाला जेनेवा प्रभाग इंटरनेशनल में शामिल किया गया। मार्क्स बाकुनिन को अच्छी तरह से जानते थे लेकिन इस कदम के नतीजों को उन्होंने कम करके आंका था। क्योंकि इस मशहूर रूसी क्रांतिकारी का प्रभाव तेजी से कई स्विस, स्पेनी और फ्रांसिसी (तथा पेरिस कम्यून के बाद इतालवी भी) प्रभागों में फैला। बासेल कांग्रेस में अपने करिश्माई व्यक्तित्व और तर्क की जोरदार शैली की बदौलत उन्होंने बहस के नतीजों को प्रभावित करने में सफलता प्राप्त की। उदाहरण के लिए विरासत के अधिकार पर मतदान के समय प्रतिनिधियों ने पहली बार जनरल कौंसिल के प्रस्ताव को खारिज कर दिया। साझेदारीवादियों को आखिरकार शिकस्त देने और प्रूधों के भूत को दफ़नाने के बाद मार्क्स को अब एक और भी कठिन प्रतिद्वंद्वी का मुकाबला करना पड़ा जिसने समूहवादी अराजकतावाद की एक नई प्रवृत्ति को जन्म दिया और संगठन का नियंत्रण हासिल करना चाहा।

7. यूरोपव्यापी विकास और फ्रांको-प्रशियाई युद्ध का विरोध

1860 दशक का उत्तरार्ध और 1870 दशक का पूर्वार्ध सामाजिक टकरावों से भरा हुआ समय था। जिन ढेर सारे मज़दूरों ने विरोध प्रदर्शनों में भाग लिया उन्होंने इंटरनेशनल से संपर्क साधने का फैसला किया। इंटरनेशनल की कीर्ति चारों दिशाओं में फैल रही थी और सीमित साधनों के बावजूद जनरल कौंसिल ने अपने यूरोपीय प्रभागों के साथ एकजुटता की अपीलों का जवाब देने और चंदा एकत्र करने में कभी कोताही नहीं बरती। उदाहरण के लिए, मार्च 1869 में ऐसा ही हुआ जब बासेल में 8000 रेशम के रंगरेजों और फीता बुनकरों ने समर्थन की अपील की। जनरल कौंसिल अपने कोश से तो मात्र 4 पौंड ही भेज सकी लेकिन इसके द्वारा जारी सर्कुलर के चलते विभिन्न देशों में अनेक मज़दूर समूहों ने 300 पौंड एकत्र किया। इससे भी महत्वपूर्ण था न्यूकैसल के इंजीनियरिंग मज़दूरों का काम के घंटे 9 तक ही सीमित रखने का संघर्ष जिसमें इंटरनेशनल के भेजे दो दूतों, जेम्स कोन (कोहेन, अज्ञात) और इकारियस ने मालिकों द्वारा महाद्वीप से अन्य मज़दूर ले आने की कोशिशों को रोकने में प्रमुख भूमिका निभाई। इस हड़ताल की सफलता पूरे देश में समारोह में तब्दील हो गई और इससे अंग्रेज पूंजीपतियों को चेतावनी मिली। उसके बाद से उन्होंने समुद्र पार से मज़दूर भर्ती करना छोड़ दिया।

1869 में समूचे यूरोप में इंटरनेशनल का प्रचुर विस्तार हुआ। बहरहाल इस मामले में ब्रिटेन अपवाद रहा। अगस्त में बर्मिंघम में संपन्न ट्रेड्स यूनियन कांग्रेस ने संस्तुति की कि इसके सभी सदस्य संगठन इंटरनेशनल में शामिल हो जाएं। लेकिन यह अपील अनसुनी रही और संबद्धता का स्तर कमोबेश 1867 के समान ही रहा। हालांकि यूनियन के नेताओं ने साझेदारीवादियों के विरुद्ध मार्क्स का पूरी तरह साथ दिया लेकिन सैद्धांतिक मुद्दों के लिए उनके पास खास समय नहीं था और वे क्रांतिकारी तेवर में पगे भी नहीं। इसी कारण से मार्क्स लंबे समय तक जनरल कौंसिल से अलग इंटरनेशनल के ब्रिटिश संघ की स्थापना का विरोध करते रहे।

प्रत्येक यूरोपीय देश में जहां भी इंटरनेशनल थोड़ा मजबूत था उसके सदस्यों ने मौजूदा संगठनों से पूरी तरह स्वायत्त नए संगठनों को जन्म दिया, अपनी संख्या के मुताबिक स्थानीय प्रभाग बनाए और/या राष्ट्रीय संघों का निर्माण किया। बहरहाल ब्रिटेन में यूनियनें ही इंटरनेशनल की मुख्य ताकत थीं और स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने सांगठनिक ढांचों को बरकरार रखा। इसके अतिरिक्त लंदन स्थित जनरल कौंसिल को विश्व मुख्यालय और ब्रिटेन के लिए नेतृत्व के दो काम एक साथ करने होते थे। जो भी हो ट्रेड यूनियनों की संबद्धता के चलते इसके प्रभाव में लगभग 50000 मज़दूर थे जबकि उसी समय समूचे महाद्वीप में इटरनेशनल की अग्रगति जारी थी।

फ़्रांस में द्वितीय साम्राज्य की दमनकारी नीतियों के चलते 1868 का साल इंटरनेशनल के लिए गंभीर संकट का साल बन गया। एकमात्र रुएं को छोड़कर इसके सभी प्रभाग लुप्त हो गए। बहरहाल अगले साल संगठन को पुनर्जीवन मिला। बासेल कांग्रेस के बाद तोलें अब इसका नेता नहीं रह गया था, वार्लिन जैसे नए नेता जिन्होंने साझेदारीवाद से नाता तोड़ लिया था वे नेता बने। 1870 में इंटरनेशनल के विस्तार का चरम क्षण आया लेकिन उसकी असली सदस्य संख्या उस काल्पनिक संख्या से काफी कम थी जो कुछ लेखकों के दिमाग की उपज और लोगों में प्रचारित थी। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि पर्याप्त वृद्धि के बावजूद संगठन फ़्रांस में उस समय मौजूद 90 विभागों में से 38 में जड़ें नहीं जमा सका था। यह संभव है कि पेरिस में सदस्यता 10000 तक पहुंच गई रही हो, जिसमें अधिकांश की संबद्धता सहकारी सोसाइटियों, ट्रेड एसोसिएशनों और प्रतिरोध सोसाइटियों के जरिए इंटरनेशनल से थी। कड़ाई से लगाए गए अनुमान रुएं और

ल्यों में तीन तीन हजार की संख्या का संकेत करते हैं (इन जगहों पर सितंबर 1870 में विद्रोह के फलस्वरूप जनता के कम्यून की घोषणा हुई थी जिसे बाद में रक्त में डुबा दिया गया)। इनके अतिरिक्त मार्सेलीज मे 4000 से कुछ अधिक सदस्य थे। पूरे देश में कुल सदस्य 30000 से कुछ अधिक होने का अनुमान है। इस तरह हालांकि फ़्रांस में इंटरनेशनल सही मायनों में जन संगठन नहीं बना फिर भी इसका आकार बड़ा था तथा इसमें व्यापक रुचि पैदा हुई थी। इसका अंदाजा हम जनरल कौंसिल को पोजीटिविस्ट प्रोलेतेरियन्स आफ़ पेरिस की ओर से सौंपे गए सदस्यता के आवेदन से लगा सकते हैं। 1870 के बाद से ब्लांकी के कुछ अनुयायियों ने भी प्रूधोंपंथी नरमदली प्रेरणा से बने संगठन के प्रति अपनी शुरुआती हिचक पर विजय पाई और मज़दूरों में इसके प्रति उत्साह देखकर खुद भी इसमें शामिल होना शुरू किया। निश्चय ही 1865 के बाद से काफी पानी बह चुका था जब तोलें और फ्रिबोर्ग द्वारा स्थापित इंटरनेशनल के फ़्रांसिसी प्रभागों को सम्मानजनक "अध्ययन सोसाइटी" जैसा कुछ समझा जाता था। फ़्रांस में संगठन के निर्देश अब सामाजिक टकराव और राजनीतिक गतिविधि को बढ़ावा देने पर केंद्रित होते थे।

बेल्जियम में 1868 की ब्रसेल्स कांग्रेस के बाद का समय संघाधिपत्यवाद के उदय, अनेकानेक विजयी हड़तालों और इंटरनेशनल से ढेर सारी मज़दूर सोसाइटियों की संबद्धता का समय था। 1870 दशक के पूर्वार्ध में सदस्य संख्या बढ़कर दसियों हजार तक पहुंच गई, शायद समूचे फ़्रांस की सदस्य संख्या को भी पार कर गई। इसी देश में इंटरनेशनल कुल आबादी में सदस्यों की सघनता तथा समाज में प्रभाव के मामले में सर्वोच्च स्थिति में पहुंचा।

स्विट्ज़रलैंड में भी इस दौरान सकारात्मक विकास दिखाई पड़ा। 1870 में कुल सदस्य संख्या 6000 थी (कुल लगभग 700000 कामगारों में), जिसमें जेनेवा के 34 प्रभागों के 2000 और जूरा इलाके से 800 सदस्य शामिल हैं। बहरहाल कुछ ही दिनों बाद बाकुनिन की गतिविधियों ने संगठन को दो बराबर हिस्सों में बांट दिया। अप्रैल 1870 में रोमान्डे फ़ेडरेशन की कांग्रेस में दोनों हिस्सों का टकराव ठीक इसी सवाल पर हुआ कि इंटरनेशनल एलायंस फ़ार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी को फ़ेडरेशन में शामिल किया जाए या न किया जाए। जब सिद्ध हो गया कि दोनों पक्षों में कोई समझौता होना असंभव है तो दो समानांतर कांग्रेसों की कार्यवाही चलती रही। जनरल कौंसिल के हस्तक्षेप के बाद ही सुलह करने पर सहमति हुई।

लंदन से जुड़ा हुआ समूह थोड़ा छोटा तो था लेकिन रोमान्डे फ़ेडरेशन नाम उसी के हिस्से आया। बाकुनिन से जुड़े हुए समूह को जूरा फ़ेडरेशन नाम अपनाना पड़ा हालांकि इंटरनेशनल के साथ इसको फिर से संबद्धता प्रदान कर दी गई।

रोमान्डे फ़ेडरेशन के नेता निकोलाई उतिन (1845-83), जिन्होंने जेनेवा में इंटरनेशनल के पहले रूसी प्रभाग की स्थापना की थी, और जोहान्न फिलिप बेकर थे जिन्होंने 1868 की गर्मियों से लेकर फ़रवरी 1870 तक बाकुनिन के साथ जुड़ाव के बावजूद ध्यान रखा कि समूचा स्विस संगठन उनके हाथों में न चला जाए। जो भी हो, जूरा फ़ेडरेशन की मजबूती से इंटरनेशनल के भीतर अराजक-संघाधिपत्यवादी धारा के निर्माण के महत्वपूर्ण दौर का पता चलता है। इसके सबसे प्रमुख व्यक्तित्व युवा जेम्स गिलौमे (1844-1916) थे जिन्होंने लंदन के साथ विवाद में मुख्य भूमिका निभाई।

इस दौर में बाकुनिन के विचार अनेक नगरों में फैलना शुरू हुए। खासकर वे दक्षिण यूरोप में फैले लेकिन जिस देश में वे सबसे तेजी से पनपे वह था स्पेन। असल में आइबेरियाई द्वीप समूह में इंटरनेशनल का विकास पहली बार नेपल्स के अराजकतावादी जिसेप फ़नेली की गतिविधियों के जरिए हुआ जिसने बाकुनिन के अनुरोध पर अक्टूबर 1868 से वसंत 1869 के बीच इंटरनेशनल के प्रभागों और एलायंस फ़ार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी (जिसका वह सदस्य था) के समूहों की स्थापना में मदद के लिए बार्सिलोना और मैड्रिड की यात्राएं कीं। उसकी यात्राओं का मकसद पूरा हुआ। लेकिन उसने अक्सर सभी व्यक्तियों को एक साथ दोनों अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के दस्तावेज पढ़ने के लिए दिए। यह तरीका तत्कालीन बाकुनिनवादी भ्रम और सैद्धांतिक संग्रहवाद का अच्छा नमूना है। स्पेनी मज़दूरों ने इंटरनेशनल की स्थापना एलायंस फ़ार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी के सिद्धांतों के साथ की। फिर भी फ़नेली ने अनसेल्मो लोरेन्ज़ो (1841-1914) जैसे महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं को इंटरनेशन की ओर खींच लाने सफलता पाई। पहले लोरेन्ज़ो ने प्रूधों की किताबें पढ़ी थीं जिनका स्पेनी अनुवाद भविष्य के स्पेनी राष्ट्रपति फ़्रांसिस्को पी वाइ मार्गल (1824-1901) ने किया था। हालांकि इंटरनेशनल के विचारों का ढेर सारा मिलावटी रूप प्रचारित था फिर भी वे संगठित होने और संघर्ष के लिए उत्सुक पंख तौल रहे मज़दूर आंदोलन तक पहुंचने में कामयाब रहे। बासेल कांग्रेस में स्पेनी प्रतिनिधि रफ़ाएल फ़ार्गा पेलिकेर (1840-90) ने दर्जनों प्रभागों की मौजूदगी की बात बताई।

उत्तरी जर्मन महासंघ में मज़दूर आंदोलन के दो राजनीतिक संगठनों—लासालपंथी जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स और मार्क्सवादी सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी आफ़ जर्मनी—की मौजूदगी के बावजूद इंटरनेशनल को लेकर कोई उत्साह नहीं था तथा इससे जुड़ने के लिए भी बहुत कम अनुरोध आए। इसके शुरुआती तीन सालों में जर्मन लड़ाकुओं ने अधिकारियों द्वारा दमन के भय से वस्तुतः इसके अस्तित्व की उपेक्षा की। लेकिन 1868 के बाद तस्वीर कुछ हद तक बदली जब इंटरनेशनल की ख्याति और सफलता की गूंज पूरे यूरोप में व्याप्त हो गई। उसके बाद से दोनों प्रतिद्वंद्वी पार्टियां इसकी जर्मन शाखा का प्रतिनिधित्व करना चाहने लगीं। लासालपंथियों के नेता जोहान्न बाप्टिस्ट फ़ोन श्वाइट्ज़र (1833-75) ने अपने जनरल एसोसिएशन को इंटरनेशनल से संबद्ध करने का आवेदन कभी नहीं दिया इसलिए उनके विरोध में लीबक्नेख्त ने मार्क्स के विचारों से अपने संगठन की निकटता का सहारा लेना चाहा लेकिन इंटरनेशनल के साथ उनके संगठन सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी आफ़ जर्मनी की संबद्धता वास्तविक की बजाय औपचारिक (या एंगेल्स के शब्दों में एकतरफ़ा) ही थी जिसमें भौतिक और वैचारिक प्रतिबद्धता न्यूनतम थी। इसकी स्थापना के एक साल के भीतर पंजीकृत इसके लगभग 10000 सदस्यों में से निजी तौर पर एकाध सौ ने ही इंटरनेशनल की सदस्यता ली (संबद्धता के प्रशियाई कानूनों के तहत यही प्रक्रिया मान्य थी)। कहा जा सकता है कि जर्मनी में इंटरनेशनल की धीमी प्रगति के लिए किसी भी कानूनी बाध्यता के मुकाबले जर्मन लोगों की कमजोर अंतर्राष्ट्रीयता की भावना अधिक जिम्मेदार थी और 1870 के उत्तरार्ध में उसमें ह्रास ही आया क्योंकि आंदोलन भी आंतरिक मसलों में ज्यादा उलझा रहा।

जर्मनी की कमजोरी की भरपाई दो अच्छी खबरों से हुई। मई 1869 में नीदरलैंड में इंटरनेशनल के पहले प्रभागों की स्थापना हुई तथा एम्सटर्डम और फ्रीसलैंड में उनका धीरे धीरे विकास शुरू हुआ। इसके बाद जल्दी ही इटली में भी इंटरनेशनल ने दस्तक दी जहां पहले यह कुछेक केंद्रों में ही मौजूद थी जिनका आपस में बहुत कम या कोई सम्पर्क नहीं था।

इससे भी अधिक या कम से कम प्रतीकात्मक तथा आशाजनक खबर अटलांटिक के दूसरे किनारे की हलचलों की थी जहां हाल के वर्षों में पहुंचे हुए प्रवासियों ने संयुक्त राज्य में इंटरनेशनल के पहले प्रभागों की स्थापना शुरू की। बहरहाल संगठन जन्म से ही दो कमजोरियों से ग्रस्त था जिनसे उसे कभी मुक्ति

नहीं मिली। लंदन से बार बार प्रेरित किए जाने के बावजूद यह न तो विभिन्न संबद्ध समूहों की राष्ट्रवादी प्रकृति से ऊपर उठ सका और न ही नई दुनिया में जन्मे मज़दूरों को अपनी ओर खींच सका। दिसंबर 1870 में जब उत्तरी अमेरिका के लिए इंटरनेशनल की केंद्रीय कमेटी की स्थापना जर्मन, फ़्रांसिसी और चेक प्रभागों ने की तो यह इंटरनेशनल के इतिहास में इस मामले में विचित्र थी कि इसमें केवल 'विदेश में जन्मे' सदस्य थे। इस असंगति का सबसे खटकने वाला पहलू यह था कि संयुक्त राज्य में इंटरनेशनल कभी अंग्रेजी भाषा में पत्र नहीं निकाल सका।

यूरोप के बीचोबीच टकराव का मतलब यह था कि तत्कालीन राष्ट्रवादी लफ़्फ़ाजी से अलग मज़दूर आंदोलन को स्वतंत्र रुख अपनाने में मदद करना सबसे बड़ी प्राथमिकता हो गई। फ़्रांको-प्रशियाई युद्ध के सवाल पर अपने पहले संबोधन में मार्क्स ने फ़्रांसिसी मज़दूरों का आवाहन किया कि वे लुई बोनापार्त (1808-73) को भगा दें और 18 साल पहले उसके द्वारा स्थापित साम्राज्य को मिटा दें। दूसरी ओर जर्मन मज़दूरों की जिम्मेदारी थी कि वे बोनापार्त की पराजय को फ़्रांसिसी जनता पर हमले में बदल जाने से रोकें :

> "आर्थिक परेशानी और राजनीतिक विभ्रम वाले पुराने समाज के विपरीत एक नया समाज पैदा हो रहा है जिसका अंतर्राष्ट्रीय नियम शांति होगा क्योंकि इसका राष्ट्रीय शासक सर्वत्र श्रमिक ही होगा। इस नए समाज का अग्रदूत इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन है।"

इस दस्तावेज की 30000 प्रतियां (जेनेवा में छपी 15000 जर्मनी और 15000 फ़्रांस के लिए) विदेश नीति के मसले पर इंटरनेशनल का पहला महत्वपूर्ण वक्तव्य हैं। इसके समर्थन में उत्साह के साथ बोलने वाले अनेक लोगों में से एक जान स्टुआर्ट मिल (1806-73) थे। उन्होंने लिखा : 'इसमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो इसमें नहीं होना चाहिए था। इससे कम शब्दों में यह बात कही भी नहीं जा सकती थी।'

सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी के नेता विलहेल्म लीबक्नेख्त और आगस्त बेबेल (1840-1913) ही उत्तरी जर्मन महासंघ के ऐसे दो संसद सदस्य थे जिन्होंने युद्ध के लिए विशेष बजट पर वोट देने से इनकार किया और इंटरनेशनल के फ़्रांस स्थित प्रभागों ने जर्मन मज़दूरों के लिए दोस्ती और एकजुटता के संदेश भेजे। फिर

भी फ़्रांस की पराजय ने यूरोप में राष्ट्र-राज्यों के, उनके अंधराष्ट्रवाद समेत, नए और अधिक शक्तिशाली युग के जन्म पर मुहर लगा दी।

8. इंटरनेशनल और पेरिस कम्यून

सेदान में जर्मनी की जीत और बोनापार्त की धर पकड़ के बाद 4 सितंबर 1870 को फ़्रांस में तीसरे रिपब्लिक की घोषणा हुई। अगले साल के जनवरी माह में पेरिस की 4 महीने की घेरेबंदी का अंत फ़्रांस द्वारा बिस्मार्क की शर्तों की मंजूरी के साथ हुआ। इसके बाद के युद्ध विराम के दौरान चुनाव हुए और एडोल्फ़ थिएर (1797-1877) की नियुक्ति रिपब्लिक के राष्ट्रपति के रूप में हुई जिसे लेजिटिमिस्टों और ओरलियनिस्टों का विराट समर्थन प्राप्त था। बहरहाल राजधानी में प्रगतिशील-गणतंत्रवादी ताकतों का बोलबाला था और जनता में व्यापक विक्षोभ की लहर थी। नगर को निःशस्त्र करने और सुधारों को मुल्तवी रखने की इच्छा वाली सरकार का सामना होने पर पेरिसवासियों ने थिएर के विरुद्ध मोर्चा खोला और 18 मार्च को मज़दूर आंदोलन के जीवन की पहली महान राजनीतिक घटना, पेरिस कम्यून का आगाज कर दिया।

हालांकि बाकुनिन ने मज़दूरों से देशभक्ति के युद्ध को क्रांतिकारी युद्ध में बदल देने की प्रार्थना की लेकिन लंदन में जनरल कौंसिल ने शुरू में चुप्पी बरती। इसने मार्क्स को इंटरनेशनल की ओर से कोई दस्तावेज लिखने की जिम्मेदारी दी लेकिन किन्ही निजी जटिल कारणों से इसके प्रकाशन को स्थगित रखा। जमीनी स्तर पर वास्तविक शक्ति संतुलन के बारे में उन्हें अच्छी तरह से खबर थी तथा पेरिस कम्यून की कमजोरियों को भी वे जानते थे इसलिए उन्हें पता था कि इसकी पराजय निश्चित है। सितंबर 1870 में ही फ़्रांको-प्रशियाई युद्ध के बारे में अपने दूसरे अभिभाषण में उन्होंने फ़्रांसिसी मज़दूर वर्ग को चेतावनी देने की कोशिश की थी :

> "वर्तमान संकट में जबकि दुश्मन पेरिस के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है तो नई सरकार को हटाने की कोई भी कोशिश हताशा भरी बेवकूफी होगी। फ़्रांसिसी मज़दूरों को...1792 के राष्ट्रीय स्मारकों द्वारा खुद को बहा ले जाने से...बचना चाहिए। उन्हें अतीत को जगाना नहीं है, बल्कि भविष्य बनाना है। उन्हें शांति के साथ दृढ़तापूर्वक अपने वर्गीय संगठन के लिए गणतांत्रिक स्वतंत्रता से हासिल अवसरों का लाभ उठाना है। इससे उन्हें फ़्रांस के नवजागरण के लिए

तथा हमारी साझा जिम्मेदारी यानी मज़दूरों की मुक्ति के लिए अपार नई शक्ति का उपहार मिलेगा। उन्हीं की ऊर्जा और विवेक पर गणतंत्र का भाग्य टिका हुआ है।"

पेरिस कम्यून की जीत की उत्तेजक घोषणा से यूरोप भर के मज़दूरों में झूठी आशा पैदा होने का खतरा था जिससे आखिरकार मनोबल में गिरावट आती और अविश्वास फैलता। इसलिए मार्क्स ने किताब लिखना टाला और कई हफ़्तों तक जनरल कौंसिल की बैठकों से दूर रहे। उनकी ये आशंकाएं जल्दी ही सही साबित हुईं और 28 मई को पेरिस कम्यून की घोषणा के दो महीने के कुछ ही दिन बाद इसे खून में डुबा दिया गया। दो दिन बाद वे जनरल कौंसिल के सामने फ़्रांस में गृहयुद्ध शीर्षक वाली पांडुलिपि के साथ प्रकट हुए। इसका वाचन हुआ और सर्वसम्मति से इसका अनुमोदन किया गया। जनरल कौंसिल के सभी सदस्यों के नाम पर इसका प्रकाशन हुआ। अगले कुछ हफ़्तों के दौरान इस दस्तावेज का भारी असर पड़ा, उन्नीसवीं सदी के मज़दूर आंदोलन के किसी भी अन्य दस्तावेज से अधिक। एक के बाद एक धड़ाधड़ तीन अंग्रेजी संस्करणों ने मज़दूरों में भरपूर प्रशंसा पाई तो पूंजीवादी हलकों में चीख पुकार मच गई। इसका पूरा या आंशिक अनुवाद अन्य दर्जनों भाषाओं में हुआ जो विभिन्न यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य में अखबारों, पत्रिकाओं तथा पुस्तिकाओं में छपा।

मार्क्स द्वारा भावावेगपूर्ण औचित्यसिद्धि तथा प्रतिक्रियावादी विरोधियों के दावों और कठमुल्ला मार्क्सवादियों द्वारा इंटरनेशनल के गौरवान्वयन की उत्सुक कोशिशों के बावजूद इस बात का सवाल ही नहीं पैदा होता कि जनरल कौंसिल ने असल में पेरिस विद्रोह की प्रेरणा दी होगी। संगठन के प्रमुख व्यक्तियों ने जरूर एक भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए लियो फ़्रांकेल (1844-96) को हंगरी में पैदा होने के बावजूद श्रम, उद्योग और व्यापार की जिम्मेदारी दी गई थी लेकिन पेरिस कम्यून का नेतृत्व क्रांतिकारी जैकोबिन पक्ष के हाथों में था। 26 मार्च को संपन्न म्युनिसिपल चुनावों में निर्वाचित 85 प्रतिनिधियों में 15 नरमदली (तथाकथित 'पार्ती देस मायेर', पेरिस के प्रशानिक जिलों के पूर्व मेयरों का समूह) और चार क्रांतिकारी थे। इन क्रांतिकारियों ने तुरंत ही इस्तीफ़ा दे दिया था और कभी कम्यून की कौंसिल के अंग नहीं बने। बचे हुए 66 लोगों में से 11 की कोई स्पष्ट राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं थी, 14 लोग नेशनल गार्ड की कमेटी से थे, 15 क्रांतिकारी-गणतंत्रवादी तथा समाजवादी थे। इसके अतिरिक्त 9 ब्लांकीपंथी और

इंटरनेशनल के 17 सदस्य थे। इंटरनेशनल के सदस्य थे—एडुआर्ड वैलें (1840-1915), बेनोई मालों (1841-93), अगस्त सेरेले (1840-72), ज्यां-लुई पिंडी (1840-1917), अलबर्ट थिएज़ (1839-81), चार्ल्स लांग्वे (1839-1903) और पूर्वकथित वार्लिन तथा फ़्रांकेल। बहरहाल विभिन्न राजनीतिक पृष्ठभूमि और अलग अलग संस्कृति से संबद्ध वे लोग कोई एकाश्मीय समूह कतई नहीं थे और अक्सर भिन्न भिन्न तरीके से वोट डालते थे। इसके कारण भी जैकोबिनीय क्रांतिकारी गणतंत्रवादी परिप्रेक्ष्य का दबदबा था। इसकी अभिव्यक्ति मई में मोंतान्यार्द नामक राजनीतिक दल की प्रेरणा से कमेटी फ़ार पब्लिक सेफ़्टी बनाने के फैसले (ब्लांकीपंथियों समेत दो तिहाई जनरल कौंसिल द्वारा अनुमोदित) में होती है। खुद मार्क्स ने भी कहा था कि 'कम्यून का बहुमत किसी भी मायने में समाजवादी नहीं था, न ही हो सकता था।'

'खूनी सप्ताह' (21-28 मई) के दौरान लगभग 10000 कम्युनार्ड या तो लड़ते हुए मारे गए या उन्हें मौत की सजा दी गई; फ़्रांस के इतिहास का यह सबसे खूनी जनसंहार था। इसके बाद पेरिस में वेर्साई के झुंड टूट पड़े। 43000 या इससे ज्यादा दूसरे लोगों को बंदी बना लिया गया। उनमें से 13500 को मौत की सजा, कैद, जबरिया श्रम या निर्वासन (अनेक को सुदूर न्यू केलेडोनिया उपनिवेश में) दिया गया। अन्य 7000 भागने में कामयाब रहे और उन्होंने इंगलैंड, बेल्जियम या स्विट्ज़रलैंड में शरण ली। यूरोपीय रूढ़िवादी और उदारवादी अखबारों ने थिएर के सैनिकों का काम पूरा किया, कम्युनार्डों पर घिनौने अपराधों का आरोप लगाया और बदतमीज मज़दूरों के विद्रोह पर 'सभ्यता' की जीत की खुशी मनाई। इसके बाद से इंटरनेशनल सारी हलचलों के केंद्र में आ गया, स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध प्रत्येक काम के लिए उसे ही दोषी ठहराया जाता। मार्क्स ने तीखी विडंबना के साथ लिखा 'जब शिकागो का भयंकर अग्निकांड हुआ तो पूरी दुनिया में टेलीग्राफ ने इसे इंटरनेशनल का नारकीय कृत्य घोषित किया और यह सचमुच आश्चर्यजनक है कि वेस्ट इंडीज को बरबाद कर देने वाले तूफान को इस पैशाचिक संगठन के मत्थे नहीं मढ़ा गया।'

मार्क्स को पूरा पूरा दिन इंटरनेशनल और खुद के बारे में अखबार में छपी निंदा का जवाब देने में बिताना पड़ता था : उन्होंने लिखा कि मैं 'इस समय लंदन का सबसे अधिक निंदित और खतरनाक व्यक्ति हूं।' इस बीच यूरोप की सारी सरकारों ने दमन के अपने उपाय पैने कर लिए, इस भय से कि पेरिस में हुए

विद्रोह के बाद अन्य जगहों पर भी विद्रोह हो सकते हैं। थिएर ने तुरंत ही इंटरनेशनल को गैर कानूनी घोषित कर दिया और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एवार्ट ग्लैडस्टोन (1809-98) से ऐसा ही करने को कहा। किसी भी मज़दूर संगठन के बारे में यह पहला राजनयिक संवाद था। नवें पोप (1792-1878) ने ऐसा ही दबाव स्विस सरकार पर डाला और तर्क दिया कि 'उस इंटरनेशनल पंथ को' बरदाश्त करना गंभीर गलती होगी 'जो समूचे यूरोप के साथ वैसा ही बरताव करना चाहेगा जैसा उसने पेरिस के साथ किया है। इन सज्जनों से...खौफ़ खाना चाहिए क्योंकि वे ईश्वर और मानवता के आंतरिक शत्रुओं की ओर से काम कर रहे हैं।' ऐसी भाषा का नतीजा यह निकला कि फ़्रांस और स्पेन ने पाइरेनीज के पार के शरणार्थियों की अदला बदली पर तथा बेल्जियम और डेनमार्क में इंटरनेशनल का दमन करने का समझौता कर लिया। लंदन ने तो राजनीतिक शरण संबंधी अपने सिद्धांतों का उल्लंघन न करते हुए कदम वापस खींच लिए लेकिन जर्मन और आस्ट्रो-हंगारी सरकारों के प्रतिनिधि नवंबर 1872 में बर्लिन में मिले और 'सामाजिक सवाल' पर उन्होंने संयुक्त वक्तव्य जारी किया :

1. कि इंटरनेशनल की प्रवृत्तियां पूंजीवादी समाज के सिद्धांतों से पूरी तरह अलग और उनके विरोध में हैं इसलिए उन्हें कड़ाई से रोकना होगा;
2. कि इंटरनेशनल इकट्ठा होने की आजादी का खतरनाक दुरुपयोग कर रहा है और इसके अपने व्यवहार और सिद्धांत के अनुरूप इसके विरुद्ध राजकीय कार्यवाही भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ही होनी चाहिए और इसीलिए उसे सभी सरकारों की एकजुटता पर आधारित होना चाहिए;
3. कि यदि कुछ सरकारें (इंटरनेशनल के विरुद्ध) फ़्रांस की तरह विशेष कानून नहीं बनाना चाहें तो भी इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन और इसकी नुकसानदेह कार्यवाहियों का आधार खत्म कर देना चाहिए।

आखिरकार इटली भी इस हमले से अछूता नहीं रहा। मैज़िनी कुछ समय से इंटरनेशनल की ओर आशा भरी निगाहों से देख रहा था। उसने भी माना कि इसके सिद्धांत 'ईश्वर,.... पितृभूमि,....और समूची निजी संपत्ति को नकारते' हैं।

पेरिस कम्यून की आलोचना मज़दूर आंदोलन के भी कुछ हिस्सों तक फैल गई। 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' के प्रकाशन के बाद ट्रेड यूनियन नेता जार्ज ओडगर और पुराने चार्टिस्ट नेता बेंजामिन लुक्राफ़्ट (1809-97) ने अखबारों के शत्रुतापूर्ण अभियान के दबाव में झुककर इंटरनेशनल से इस्तीफ़ा दे दिया। बहरहाल किसी

भी ट्रेड यूनियन ने संगठन से अपना समर्थन वापस नहीं लिया। इससे एक बार फिर पुष्ट हो गया कि इंटरनेशनल की बढ़ोत्तरी ब्रिटेन में न होने का मुख्य कारण मज़दूर वर्ग की राजनीतिक उदासीनता थी।

पेरिस में खूनी पटाक्षेप और यूरोप भर में निंदा की लहर तथा सरकारी दमन के बावजूद पेरिस कम्यून के बाद इंटरनेशनल मजबूत और ज्यादा विख्यात हुआ। पूंजीपतियों और मध्यवर्गी लोगों की नजर में इंटरनेशनल स्थापित व्यवस्था के लिए खतरे का प्रतीक था लेकिन मज़दूरों के दिल में वह शोषण और अन्याय विहीन दुनिया की उम्मीद जगाता था। विद्रोही पेरिस ने मज़दूर आंदोलन की किलेबंदी कर दी, अधिक क्रांतिकारी रुख अपनाने और जुझारूपन को तेज करने के लिए प्रेरित किया। अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि क्रांति संभव है, कि लक्ष्य हो सकता है और होना चाहिए ऐसे समाज का निर्माण जो पूंजीवादी व्यवस्था से पूरी तरह भिन्न हो, लेकिन यह भी कि इसे हासिल करने के लिए मज़दूरों को राजनीतिक जुड़ाव के टिकाऊ और सुसंगठित रूपों को तैयार करना होगा।

यह अपार ओजस्विता हर कहीं दीख रही थी। जनरल कौंसिल की मीटिंगों में उपस्थिति दोगुनी हो गई और इंटरनेशनल से जुड़े हुए अखबारों की तादाद और कुल बिक्री भी बढ़े। समाजवादी सिद्धांतों के प्रसार में जिनका गंभीर योगदान रहा वे थे : जेनेवा में ल'इगालिते जो पहले बाकुनिनपंथी अखबार था और फिर 1870 में संपादक बदलने के बाद स्विट्ज़रलैंड में इंटरनेशनल का प्रधान पत्र बन गया; लाइपत्सिग में सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी का पत्र डेर फ़ोक्सस्टाट; मैड्रिड में स्पैनिश फ़ेडरेशन का आधिकारिक अखबार ला इमान्सिपाशियों; मिलान में ई गाज़ेतिनो रोजा जो पेरिस की घटनाओं के बाद इंटरनेशनल की ओर चला आया; डेनिश मज़दूरों का पहला खबरची जोसियालित्सेन; और शायद इन सबमें सर्वोत्तम रूएं में ला सोसिएल।

आखिरी और सबसे महत्वपूर्ण बात कि इंटरनेशनल का विस्तार बेल्जियम और स्पेन में जारी रहा जहां मज़दूरों की सक्रियता का स्तर पेरिस कम्यून से पहले ही बहुत अच्छा था तथा इटली में सचमुच एक गतिभंग दिखाई पड़ा। अनेक मैज़िनीपंथियों ने अपने भूतपूर्व प्रमुख की मान्यताओं से निराश होकर संगठन से जुड़ना शुरू किया तथा जल्दी ही इसके महत्वपूर्ण स्थानीय नेता बने। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण था जिसेप गैरीबाल्डी का समर्थन। हालांकि उनके दिमाग में

लंदन स्थित इंटरनेशनल के बारे में अमूर्त धारणा ही थी फिर भी इस 'दो दुनिया के नायक' ने इसका साथ पूरी तरह से देने का फैसला किया। सदस्यता के आवेदन पर उन्होंने मशहूर वाक्य लिखा : 'इंटरनेशनल भविष्य का सूर्य है'। इसे मज़दूरों के दर्जनों अखबारों और पत्रिकाओं में छापा गया। संगठन में शामिल होने में जो लोग हिचक रहे थे ऐसे अनेक लोगों को इस पत्र ने इंटरनेशनल से जोड़ने में भूमिका निभाई।

पुर्तगाल में भी इंटरनेशनल ने नए प्रभाग खोले। वहां इसकी स्थापना अक्टूबर 1871 में हुई थी। इसी माह डेनमार्क में भी कोपेनहागन और जुटलैंड में नवजात अधिकांश यूनियनों को इसने जोड़ना शुरू किया। ब्रिटेन में आयरलैंड के मज़दूरों के प्रभागों की स्थापना एक और महत्वपूर्ण विकास था तथा मज़दूरों के नेता जान मैकडोनेल को आयरलैंड के लिए जनरल कौंसिल का संचार सचिव नियुक्त किया गया। दुनिया के विभिन्न हिस्सों से संबद्धता के लिए अप्रत्याशित अनुरोध मिले : कलकत्ता के कुछ अंग्रेज मज़दूरों, विक्टोरिया, आस्ट्रेलिया और क्राइस्टचर्च, न्यूज़ीलैंड के मज़दूर समूहों तथा ब्यूनस आयर्स के ढेर सारे कारीगरों ने जुड़ने की इच्छा जाहिर की।

9. 1871 का लंदन सम्मेलन

इंटरनेशनल की पिछली कांग्रेस को संपन्न हुए दो साल बीत चुके थे लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों में नई कांग्रेस आयोजित नहीं हो पा रही थी। इसलिए जनरल कौंसिल ने लंदन में सम्मेलन आयोजित करने का फैसला किया; 17 से 23 सितंबर के बीच 22 प्रतिनिधियों की भागीदारी के साथ सम्मेलन संपन्न हुआ। ये ब्रिटेन (आयरलैंड को भी पहली बार प्रतिनिधित्व मिला), बेल्जियम, स्विट्ज़रलैंड और स्पेन से तथा निर्वासित फ़्रांसिसी थे।

मार्क्स ने पहले ही घोषित कर रखा था कि सम्मेलन 'सिर्फ़ संगठन और नीति के सवालों पर' होगा, सैद्धांतिक सवालों पर बाद में कभी विचार होगा। इसके पहले ही अधिवेशन में उन्होंने इसे दोहराया :

> "जनरल कौंसिल ने यह सम्मेलन विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के साथ उन उपायों के बारे में सहमति बनाने के के लिए आयोजित किया है जिन्हें ढेर सारे देशों में इंटरनेशनल के समक्ष खतरों के मद्देनजर करना तथा परिस्थिति की

जरूरत के अनुरूप नए संगठन की दिशा में आगे बढ़ना जरूरी हो गया है। दूसरा मुद्दा यह है कि जो सरकारें उपलब्ध प्रत्येक साधन से इंटरनेशनल को खत्म करने के लिए लगातार सक्रिय हैं उनका जवाब कैसे दिया जाए। आखिरी बात स्विस विवाद को हमेशा के लिए हल करना है।"

इन प्राथमिक कामों को पूरा करने के लिए मार्क्स ने पूरा जोर लगा दिया : इंटरनेशनल को पुनर्गठित करना, दुश्मन ताकतों के हमलों से इसकी रक्षा करना और बाकुनिन के बढ़ते प्रभाव को रोकना। सम्मेलन के सबसे सक्रिय प्रतिनिधि के बतौर मार्क्स 102 बार बोलने खड़े हुए, जो प्रस्ताव उनकी योजना से मेल नहीं खाते थे उन्हें रोका और असहमत लोगों को भी अपने पक्ष में कर लिया। लंदन के इस सम्मेलन ने संगठन में उनके कद की पुष्टि की जो न केवल उसकी राजनीतिक दिशा को आकार देने वाला दिमाग था बल्कि उसका सबसे अधिक लड़ाकू और सक्षम योद्धा भी था।

इस सम्मेलन को जिस महत्वपूर्ण निर्णय के लिए बाद में भी याद रखा जाएगा वह था वाइलैन्त के नवें प्रस्ताव का अनुमोदन। ब्लांकीपंथियों की बची खुची ताकतों ने पेरिस कम्यून के अंत के बाद इंटरनेशनल से अपने को जोड़ लिया था। उनके इस नेता ने प्रस्तावित किया कि संगठन को जनरल कौंसिल के नेतृत्व में केंद्रीकृत, अनुशासित पार्टी में बदल दिया जाना चाहिए। ब्लांकीपंथियों का मानना था कि क्रांति के लिए लड़ाकुओं का सुगठित केंद्रक पर्याप्त है। इसी तरह की बातों पर कुछेक मतभेदों के बावजूद मार्क्स ने वाइलैन्त के गुट के साथ मोर्चा बनाने में कोई हिचक नहीं दिखाई। ऐसा न केवल इंटरनेशनल के भीतर बाकुनिनपंथी अराजकतावाद का विपक्ष मजबूत करने के लिए जरूरी लगा बल्कि वर्ग संघर्ष के नए दौर में आवश्यक बदलावों के बारे में व्यापक सहमति बनाने के लिए भी किया गया। इसलिए लंदन में पारित प्रस्ताव में कहा गया :

"कि संपत्तिशाली वर्गों की सामूहिक शक्ति के विरुद्ध मज़दूर वर्ग राजनीतिक पार्टी के रूप में अपने आपको संगठित किए बिना वर्ग के रूप में कुछ नहीं कर सकता। यह पार्टी संपत्तिशाली वर्गों द्वारा बनाई गई सभी पुरानी पार्टियों के विरुद्ध और उनसे अलग होगी। कि राजनीतिक पार्टी के रूप में मज़दूर वर्ग का यह संगठन सामाजिक क्रांति की विजय और उसके अंतिम लक्ष्य, वर्गों के उन्मूलन की गारंटी के लिए अपरिहार्य है। और कि मज़दूर वर्ग के आर्थिक संघर्षों से हासिल शक्ति संयोजन को जमींदारों तथा पूंजीपतियों की राजनीतिक

सत्ता के विरुद्ध इसके संघर्षों के लिए उत्तोलक (लीवर) के बतौर काम करना चाहिए।"

निष्कर्ष स्पष्ट था : 'आर्थिक आंदोलन (मज़दूर वर्ग का) तथा उसकी राजनीतिक कार्यवाहियां अविभाज्य रूप से आपस में जुड़ी हुई हैं।'

1866 की जेनेवा कांग्रेस ने अगर ट्रेड यूनियनों का महत्व स्थापित किया था तो 1871 के लंदन सम्मेलन के साथ केंद्र में बदलाव आया और वह अब आधुनिक मज़दूर आंदोलन का एक और महत्वपूर्ण हथियार यानी राजनीतिक पार्टी बन गया। बहरहाल इस बात पर भी बल देना होगा कि बीसवीं सदी में इसकी जो धारणा विकसित हुई उसके मुकाबले उस समय की धारणा काफी व्यापक थी। इसलिए मार्क्स की धारणा को ब्लांकीपंथियों की धारणा से, बाद में दोनों का टकराव खुलेआम हुआ, और अक्टूबर क्रांति के बाद कम्युनिस्ट संगठनों द्वारा अपनाई गई धारणा से भी अलगाना चाहिए।

मार्क्स के तईं मज़दूर वर्ग की खुद की मुक्ति के लिए दीर्घकालीन और कष्टसाध्य प्रक्रिया की जरूरत थी। यह प्रक्रिया सेर्गेई नेचायेव (1847-82) की क्रांतिकारी की प्रश्नावली में बताए गए सिद्धांत और व्यवहार के पूरी तरह विपरीत थी। इस प्रश्नावली में गुप्त सोसाइटियों की वकालत की गई थी जिसकी आलोचना लंदन के प्रतिनिधियों ने की लेकिन बाकुनिन ने उत्साह के साथ उसका समर्थन किया था।

लंदन सम्मेलन में केवल चार प्रतिनिधियों ने नवें प्रस्ताव का विरोध किया। उनका तर्क था कि राजनीति में संलग्न न होने के 'अनुपस्थितिवादी' रुख की जरूरत है। लेकिन मार्क्स की जीत जल्दी ही भंगुर सिद्ध हुई। जिन्हें राजनीतिक पार्टी कहा जाए उनकी प्रत्येक देश में स्थापना के आवाहन और जनरल कौंसिल को व्यापक शक्ति प्रदान करने का इंटरनेशनल के आंतरिक जीवन के लिए गंभीर नतीजा निकला। वह अभी संगठन के लचीले रूप के मुकाबले इतनी तेजी से राजनीतिक तौर पर समरूप ढांचे में ढलने के लिए तैयार नहीं था।

लंदन में आखिरी फैसला ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल की स्थापना का लिया गया। चूँकि मार्क्स की नजर में पेरिस कम्यून की पराजय के साथ महाद्वीप में क्रांति की स्थिति क्षीण हो चली थी इसलिए ब्रिटिश पहलकदमियों की नजदीकी निगरानी की कोई जरूरत नहीं रह गई थी।

मार्क्स को यकीन था कि सम्मेलन के प्रस्तावों का समर्थन लगभग सभी प्रमुख फ़ेडरेशन और स्थानीय प्रभाग कर देंगे लेकिन जल्दी ही उन्हें फिर से सोचना पड़ा। 12 नवंबर को जूरा फ़ेडरेशन ने सोनविलिएर के छोटे से कम्यून में अपनी अलग कांग्रेस आहूत की और हालांकि बाकुनिन तो इसमें भाग नहीं ले सके लेकिन इसके जरिए इंटरनेशनल के भीतर आधिकारिक विपक्ष की आमद हो गई। कार्यवाही के अंत में जारी इंटरनेशनल के सभी फ़ेडरेशनों के लिए सर्कुलर में गिलौमे और अन्य भागीदारों ने जनरल कौंसिल पर आरोप लगाया कि वह इंटरनेशनल में 'प्राधिकार के सिद्धांत' का प्रवेश करा रहा है और इसकी मौलिक संरचना को बदलकर 'कमेटी द्वारा शासित और निर्देशित पदानुक्रमिक संगठन' बना रहा है। स्विस प्रभाग ने घोषित किया कि वे 'समस्त निर्देशक प्राधिकार' के विरुद्ध हैं 'भले ही वह प्राधिकार मज़दूरों द्वारा निर्वाचित और अनुमोदित हो' और जोर दिया कि 'प्रभागों की स्वायत्तता का सिद्धांत बरकरार रखा जाए' ताकि जनरल कौंसिल 'केवल संवाद और लेखा जोखा' का निकाय रहे। अंत में उन्होंने मांग की कि जितनी जल्दी हो सके कांग्रेस आयोजित की जाए।

हालांकि जूरा फ़ेडरेशन की प्रतिक्रिया अप्रत्याशित नहीं थी फिर भी शायद मार्क्स को अचंभा हुआ जब विक्षोभ के संकेत और जनरल कौंसिल की राजनीतिक दिशा से भी विद्रोह अन्य जगहों पर प्रकट हुए। अनेक देशों में लंदन में लिए गए फैसलों को स्थानीय राजनीतिक स्वायत्तता का अस्वीकार्य अतिक्रमण समझा गया। सम्मेलन में बेल्जियन फ़ेडरेशन ने विभिन्न पक्षों के बीच मध्यस्थता करना चाहा था लेकिन अब उसने लंदन के प्रति अधिक आलोचनात्मक रुख अपनाना शुरू किया। हालैंड ने भी बाद में दूरी बना ली। दक्षिणी यूरोप में प्रतिक्रिया और भी मजबूत थी इसलिए विपक्ष को जल्दी ही भरपूर समर्थन मिला। असल में तो आइबेरियाई इंटरनेशनल की भारी बहुसंख्या जनरल कौंसिल के विरोध में हो गई और बाकुनिन के विचारों का अनुमोदन किया। बेशक इसका आंशिक कारण यह था कि इस इलाके में औद्योगिक सर्वहारा की उपस्थिति केवल मुख्य शहरों में थी और यहां मज़दूर आंदोलन अब भी बहुत कमजोर था तथा प्रमुख रूप से आर्थिक मांगों तक सीमित था। इटली में भी लंदन सम्मेलन के नतीजों को नकारात्मक तरीके से ही देखा गया। मैज़िनी के अनुयायी 1 से 6 नवंबर 1871 तक रोम में एकत्र हुए और जनरल कांग्रेस आफ़ इटालियन वर्कर्स सोसाइटीज (कुछ अधिक नरमपंथी मज़दूर खेमा) संपन्न हुई, शेष अधिकांश लोग बाकुनिन के विचारों के पक्ष में थे। 4 से

6 अगस्त 1872 तक रिमिनी में इटालियन फ़ेडरेशन आफ़ द इंटरनेशनल की स्थापना कांग्रेस हुई और इसमें शामिल लोगों ने जनरल कौंसिल के विरुद्ध सर्वाधिक मूलगामी राय बनाई : वे इंटरनेशनल की आगामी कांग्रेस में भाग नहीं लेंगे, बल्कि उन्होंने न्यूचातेल, स्विट्ज़रलैंड में 'प्राधिकार विरोधी जनरल कांग्रेस' आयोजित करने का प्रस्ताव लिया। वस्तुतः आसन्न विभाजन की यह पहली कार्यवाही थी।

अटलांटिक के दूसरे तट पर भी संगठन में टकराव फूट पड़ा हालांकि मुद्दे अलग थे। 1871 के दौरान वहां के अनेक शहरों में इंटरनेशनल का विस्तार हुआ था और 50 प्रभागों की कुल सदस्यता 2700 तक पहुंच गई थी। अगले साल यह संख्या और भी बढ़ी (शायद लगभग 4000) लेकिन अब भी यह बीस लाख से ऊपर अमेरिकी कामगारों का बहुत ही छोटा हिस्सा था। संगठन अब भी प्रवासी समुदायों से बाहर निकलकर संयुक्त राज्य में जन्मे मज़दूरों को खींच पाने में असमर्थ ही रहा था। आंतरिक कलह का भी विनाशकारी असर पड़ा क्योंकि न्यूयार्क आधारित इंटरनेशनल के अमेरिकी सदस्य दिसंबर 1871 में दो धड़ों में बंट गए जिनमें से प्रत्येक धड़ा संयुक्त राज्य में इंटरनेशनल का वैध प्रतिनिधि होने का दावा करता था।

इनमें से स्प्रिंग स्ट्रीट कौंसिल नामक पहले और शुरू में बड़े धड़े ने अमेरिकी समाज के सबसे उदारपंथी समूहों के साथ संश्रय प्रस्तावित किया। इसे जनरल कौंसिल में अमेरिका के लिए संवाद सचिव के समर्थन का भरोसा था और इसकी सबसे सक्रिय शाखा 12वां प्रभाग थी। दूसरे धड़े का मुख्यालय टेन्थ वार्ड होटेल था। वह मज़दूर वर्गीय दिशा पर अडिग रहा और फ्रेडरिक एडोल्फ़ सोर्ज (1828-1906) इसमें सबसे प्रमुख व्यक्ति थे। मार्च 1872 में जनरल कौंसिल ने जुलाई में एकता कांग्रेस आयोजित करने की मांग की लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला और मई में आधिकारिक विभाजन हो गया। आपसी मतभेदों के चलते इंटरनेशनल के सदस्यों में कमी आने लगी। टेन्थ वार्ड होटेल धड़े ने 1872 में 6 से 8 जुलाई तक अपनी कांग्रेस की और नार्थ अमेरिकन कानफ़ेडरेशन की स्थापना की। इसके 950 सदस्य 22 प्रभागों में बिखरे हुए थे (केवल 3 अंग्रेजी भाषी, शेष 12 जर्मन, 4 फ़्रांसिसी, आयरलैंड, इटली और स्कैंनडेनेविया से एक एक)। इसी बीच मई में स्प्रिंग स्ट्रीट कौंसिल धड़े के कुछ सदस्यों ने इक्वल राइट्स पार्टी के एक सम्मेलन में भाग लिया। इस पार्टी की ओर से संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति पद के लिए

विक्टोरिया वुडहल चुनाव लड़ रही थीं। यह कोई वर्गीय मंच नहीं था बल्कि इसमें काम के हालात के नियमन और रोजगार सृजन के आम वादे किए गए थे। इसके कारण कुछ प्रभागों ने कौंसिल का साथ छोड़ दिया और इनकी सदस्य संख्या केवल 1500 रह गई। जुलाई में अमेरिकन कानफ़ेडरेशन के जन्म के बाद कौंसिल ने महज 13 प्रभाग बरकरार रखे जिनकी सदस्य संख्या 500 से कम ही थी (अधिकतर कारीगर और बुद्धिजीवी)। ये प्रभाग जनरल कौंसिल की दिशा को चुनौती देने वाले यूरोपीय फ़ेडरेशनों के साथ जुड़ गए।

अटलांटिक पार के इन झगड़ों के चलते लंदन के सदस्यों के आपसी रिश्ते भी खराब हुए। 1871-72 के दौरान जनरल कौंसिल के सचिव जान हेल्स (1839-अज्ञात) ने इकारियस की जगह अमेरिका के संवाद सचिव का कार्यभार संभाला लेकिन नीति उन्हीं की जारी रखे रहे। दोनों ही लोगों से मार्क्स के निजी रिश्ते खट्टे हो चले और ब्रिटेन में भी आंतरिक टकराव प्रकट होना शुरू हुआ। जनरल कौंसिल का समर्थन बहुसंख्यक स्विस, फ़्रांसिसी (अब ज्यादातर ब्लांकीपंथी), कमजोर जर्मन ताकतें, डेनमार्क, आयरलैंड और पुर्तगाल के नव गठित प्रभाग तथा हंगरी और बोहेमिया में पूर्वी यूरोपीय समूह करते थे। लेकिन उनकी कुल तादाद लंदन सम्मेलन के अंत में मार्क्स की उम्मीदों से काफी कम निकली।

जनरल कौंसिल का विरोधी पक्ष चरित्र के मामले में विविधतापूर्ण था और कभी कभी इसकी वजह निहायत निजी होती थी। ये सभी विचित्र किस्म के रसायन से एक साथ बंधे हुए थे और इसके चलते इंटरनेशनल का नेतृत्व करना और भी मुश्किल हो जाता था। कुछ देशों में बाकुनिन के सिद्धांतों के प्रति आकर्षण और विभिन्न तरह के विपक्षियों को एक जगह बांधे रखने की गिलौमे की क्षमता के भी परे 'मज़दूर वर्गीय राजनीतिक कार्यवाही' संबंधी प्रस्ताव के प्रति विरोध की मुख्य वजह वह माहौल था जो मार्क्स द्वारा प्रस्तावित गुणात्मक छलांग को स्वीकार नहीं करना चाहता था। व्यावहारिकता के तमाम दावों के बावजूद लंदन सम्मेलन में हुए बदलाव को अनेक लोगों ने बेवकूफाना हस्तक्षेप समझा। केवल बाकुनिन के साथ जुड़ा समूह ही नहीं, बल्कि अधिकांश फ़ेडरेशन और स्थानीय प्रभाग इंटरनेशनल के निर्माण के समय की स्वायत्तता तथा यथार्थ की विविधता के प्रति सम्मान को इंटरनेशनल का आधार स्तम्भ मानते थे। मार्क्स इसे भांपने में चूक गए और इसके कारण संगठन का संकट त्वरित हो गया।

10. इंटरनेशनल का संकट

1872 की गर्मियों के अंत में आखिरी लड़ाई हुई। पिछले तीन सालों में भयंकर घटनाएं घटित हुई थीं–फ़्रांको-प्रशियाई युद्ध, पेरिस कम्यून के बाद दमन की लहर और ढेर सारी आंतरिक कलहें। इन सबके बाद आखिरकार इंटरनेशनल की कांग्रेस हुई। जिन देशों में इसने हाल में जड़ पकड़ी थी वहां इसका विस्तार इंटरनेशनल के नारों से अचानक उत्साहित यूनियन नेताओं और मज़दूर कार्यकर्ताओं की जोरदार कोशिशों से हो रहा था। 1872 में संगठन की इटली, डेनमार्क, पुर्तगाल और नीदरलैंड में सर्वाधिक तीव्र वृद्धि हुई। ऐसा ठीक उसी समय हुआ जब फ़्रांस, जर्मनी और आस्ट्रो-हंगारी साम्राज्य में इस पर प्रतिबंध लगा हुआ था। फिर भी ज्यादातर सदस्यों को इसके नेतृत्वकारी समूह में चलने वाले टकरावों की गंभीरता की जानकारी नहीं थी।

इंटरनेशनल की पांचवीं कांग्रेस हेग में 2 से 7 सितंबर के बीच संपन्न हुई। इसमें कुल 14 देशों से 65 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें 18 फ़्रांसिसी थे (जनरल कौंसिल में लिए गए 4 ब्लांकीपंथियों समेत), 15 जर्मन, 7 बेल्जियन, 5 ब्रिटिश, 5 स्पेनी, 4 स्विस, 4 डच, 2 आस्ट्रियाई और डेनमार्क, आयरलैंड, हंगरी, पोलैंड और आस्ट्रेलिया (विक्टोरिया प्रभाग से डब्ल्यू ई हरकोर्ट [अज्ञात]) से एक एक। फ़्रांसिसी पाल लफ़ार्ग को लिस्बन फ़ेडरेशन ने (और मैड्रिड फ़ेडरेशन ने भी) नामित किया था। इंटरनेशनल की इतालवी शाखा अपने सात प्रतिनिधियों को भेज नहीं सकी लेकिन इसके बावजूद यह इंटरनेशनल के इतिहास की सर्वाधिक प्रातिनिधिक जुटान थी।

कांग्रेस के महत्व के कारण मार्क्स को इसमें एंगेल्स के साथ भाग लेना पड़ा। असल में तो यह संगठन की एकमात्र कांग्रेस थी जिसमें मार्क्स ने भाग लिया। इसमें न तो डि पाएपे (शायद जानते थे कि साल भर पहले की लंदन जैसी मध्यस्थता वे नहीं निभा पाएंगे) आ सके और न ही बाकुनिन पहुंच सके। लेकिन जनरल कौंसिल के फैसलों का विरोधी 'स्वायत्ततावादी' समूह पूरी ताकत के साथ मौजूद था। इस समूह में बेल्जियम, स्पेन और नीदरलैंड के सारे प्रतिनिधि थे, स्विट्ज़रलैंड के आधे और ब्रिटेन, फ़्रांस और संयुक्त राज्य से कुछ कुछ। उनकी कुल संख्या 25 थी।

नियति की विंडबना कहिए कि कांग्रेस कनकोर्डिया हाल में शुरू हुई लेकिन

कांग्रेस में कनकोर्ड यानी सामंजस्य का लेशमात्र भी नहीं था। सभी सत्रों में दोनों खेमों के बीच शत्रुता चरम पर थी जिसके चलते बहसों का स्तर पिछली कांग्रेसों के मुकाबले बेहद घटिया था। यह शत्रुता क्रिडेन्शियल की पुष्टि के सवाल पर तीन दिनों की व्यर्थ तकरार से और कटु हो गई। प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व सचमुच पूरी तरह से विषम था। उसमें संगठन के आंतरिक शक्ति संतुलन का सही प्रतिबिंबन नहीं हो रहा था। उदाहरण के लिए जर्मनी में इंटरनेशनल का उस तरह से कोई प्रभाग नहीं था जबकि फ़्रांस में उन्हें भूमिगत होना पड़ा था और उनका जनादेश काफी विवादास्पद था। अन्य प्रतिनिधियों को जनरल कौंसिल की सदस्यता के नाते प्रतिनिधित्व मिला था और वे किसी खास प्रभाग की इच्छा के प्रतिनिधि नहीं थे।

हेग कांग्रेस के प्रस्तावों का अनुमोदन इसीलिए हो सका क्योंकि कांग्रेस की संरचना में विकार था। वे अप्रामाणिक थे और उद्देश्य की उपयोगिता ही उन्हें एक साथ बांधे हुए थी फिर भी कांग्रेस में जो प्रतिनिधि अल्पसंख्यक थे असल में वे ही इंटरनेशनल की सबसे विशाल बहुसंख्या के प्रतिनिधि थे।

हेग कांग्रेस में सबसे महत्वपूर्ण फैसला यह हुआ कि 1871 के लंदन सम्मेलन के नवें प्रस्ताव को इंटरनेशनल की नियमावली की नई धारा 7 अ के रूप में शामिल कर लिया गया। 1864 की अस्थायी नियमावली में कहा गया था कि 'इसलिए मज़दूर वर्ग की आर्थिक मुक्ति ही वह महान लक्ष्य है जिसे हासिल करने के साधन के बतौर प्रत्येक राजनीतिक आंदोलन इसकी मातहती में चलेगा'। जो नई बात जोड़ी गई उसमें संगठन के भीतर का नया शक्ति संतुलन प्रतिबिम्बित हो रहा था। समाज के रूपांतरण के लिए अब राजनीतिक संघर्ष आवश्यक था क्योंकि 'जमीन के मालिक और पूंजी के मालिक अपनी आर्थिक इजारेदारी की रक्षा और उसकी निरंतरता के लिए और मज़दूरों को गुलाम बनाए रखने के लिए हमेशा अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों का इस्तेमाल करेंगे इसलिए राजनीतिक सत्ता को जीतना मज़दूर वर्ग का महान कर्तव्य बन गया है'।

इस समय का इंटरनेशनल अपनी स्थापना के समय से पूरी तरह से भिन्न था। अधिकाधिक हाशिये पर जाने के बाद मूलगामी-लोकतांत्रिक घटक अब बाहर हो चुके थे, साझेदारीवादी पराजित किए जा चुके थे और उनमें से अनेक ने विचार बदल लिए थे, संगठन में सुधारवादियों की बहुतायत नहीं रह गई थी (ब्रिटेन को छोड़कर) और पूंजीवाद विरोध समूचे इंटरनेशनल की तथा अराजकतावादी-समूहवादी

जैसी हाल में निर्मित प्रवृत्तियों की राजनीतिक दिशा बन चुका था। इससे भी आगे की बात यह थी कि इंटरनेशनल की मौजूदगी के कुछेक सालों में थोड़ी बहुत आर्थिक समृद्धि नजर आई थी जिसके कारण हालात कुछ कम जोखिम भरे रहे लेकिन इसके बावजूद मज़दूरों ने समझ लिया कि ऐसे दर्द निवारकों के जरिए नहीं बल्कि असली बदलाव केवल मनुष्य के शोषण के अंत से आएगा। अब उनके संघर्ष अधिकाधिक उनकी भौतिक जरूरतों के आधार पर हो रहे थे, न कि जिनसे वे जुड़े थे उन खास समूहों की पहल के आधार पर।

बड़ी तस्वीर भी पूरी तरह से भिन्न हो गई थी। 1871 में जर्मनी के एकीकरण ने ऐसे युग के आगमन की पुष्टि कर दी जिसमें राजनीतिक, कानूनी और भूभागीय पहचान का केंद्रीय रूप राष्ट्र-राज्य बन गया। इसने ऐसे राष्ट्रोपरि निकाय पर सवाल खड़ा कर दिया जिसकी आमदनी अलग अलग देशों से एकत्र सदस्यता राशि थी तथा जो उन देशों के सदस्यों के नेताओं के बड़े हिस्से पर निर्भर था। इसके साथ ही राष्ट्रीय आंदोलनों और संगठनों के बीच बढ़ते अंतर्विरोधों ने जनरल कौंसिल के लिए सबकी मांगों को संतुष्ट करने लायक राजनीतिक संश्लेषण तैयार करना अत्यंत कठिन बना दिया। सही बात यह है कि शुरुआत से ही इंटरनेशनल ऐसे ट्रेड यूनियनों और राजनीतिक संगठनों का जमाजोड़ था जिनमें आपसी संगति आसान नहीं थी और इनके जरिए ठीक ठीक संगठनों के मुकाबले भावनाओं और राजनीतिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व होता था। बहरहाल 1872 के आते आते इंटरनेशनल के विभिन्न घटक और आम तौर पर मज़दूरों के संघर्ष स्पष्ट रूप से परिभाषित और सुगठित हो चले थे। ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों के कानूनी हो जाने से वे आधिकारिक रूप से राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन का अंग हो गईं। इंटरनेशनल का बेल्जियम फ़ेडरेशन बहुशाखाई संगठन था जिसमें केंद्रीय नेतृत्व सिद्धांत के क्षेत्र में स्वायत्त और महत्वपूर्ण योगदान करने में सक्षम था। जर्मनी में मज़दूरों की दो पार्टियां थीं, सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी आफ़ जर्मनी और जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स, और दोनों के ही संसद सदस्य थे। फ़्रांसिसी मज़दूर ल्यों से पेरिस तक 'स्वर्ग पर धावा' मारने की कोशिशें कर चुके थे। स्पेनी फ़ेडरेशन इतना विस्तार कर चुका था कि जन संगठन बन जाने की कगार पर था। अन्य देशों में भी ऐसे ही बदलाव हो रहे थे।

इस प्रकार इंटरनेशनल का शुरुआती ढांचा इसके मूल लक्ष्य के पूरा होने के साथ पुराना पड़ चुका था। अब हड़तालों के लिए यूरोप व्यापी समर्थन जुटाने की

तैयारी नहीं करनी थी। ट्रेड यूनियनों की या जमीन और उत्पादन के साधनों के समाजीकरण की उपयोगिता के बारे में कांग्रेस आयोजित करने की जरूरत नहीं रह गई थी। ये काम अब समूचे संगठन की सामूहिक धरोहर का अंग बन चुके थे। पेरिस कम्यून के बाद अब मज़दूर आंदोलन के सामने सचमुच क्रांतिकारी चुनौती दरपेश थी : पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के खात्मे और पूंजीवादी दुनिया की संस्थाओं को उखाड़ फेंकने के लिए किस तरह का संगठन चाहिए? अब सवाल यह नहीं रह गया था कि वर्तमान समाज को कैसे सुधारा जाए बल्कि सवाल यह था कि नया समाज कैसे बनाया जाए। वर्ग संघर्ष की इस नई मंजिल में मार्क्स को प्रत्येक देश में मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टियों का निर्माण अपरिहार्य महसूस हुआ। इस मामले में फ़रवरी 1871 में एंगेल्स द्वारा लिखित दस्तावेज 'टु द फ़ेडरल कौंसिल आफ़ द स्पैनिश रीजन आफ़ द इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन' सर्वाधिक स्पष्ट कथन है :

> "अनुभव से सर्वत्र यह दिखाई पड़ा है कि पुरानी पार्टियों के इस प्रभुत्व से सर्वहारा को मुक्त करने का सर्वोत्तम तरीका प्रत्येक देश में ऐसी सर्वहारा पार्टी का निर्माण करना है जिसकी अपनी स्वतंत्र नीति हो, ऐसी नीति जो पुरानी पार्टियों से साफ तौर पर अलग हो क्योंकि इसमें मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए जरूरी शर्तों की अभिव्यक्ति होगी। इस नीति में प्रत्येक देश की विशेष परिस्थितियों के अनुरूप मुद्दों की भिन्नता हो सकती है लेकिन चूंकि पूंजी और श्रम के बीच बुनियादी रिश्ते सर्वत्र समान हैं और शोषित वर्गों के ऊपर संपत्तिशाली वर्गों का राजनीतिक प्रभुत्व सभी देशों का वर्तमान सच है इसलिए सर्वहारा नीति के सिद्धांत और लक्ष्य कम से कम सभी पश्चिमी देशों में समान होंगे।....राजनीतिक क्षेत्र में अपने दुश्मनों के साथ लड़ना छोड़ देने का मतलब होगा खासकर संगठन और प्रचार के मामले में सबसे ताकतवर हथियार से हाथ धो बैठना।"

इसलिए इसके बाद से सर्वहारा के संघर्ष के लिए पार्टी आवश्यक मानी जाने लगी। माना गया कि इसे सभी मौजूदा राजनीतिक ताकतों से स्वतंत्र होना होगा और इसके कार्यक्रम तथा संगठन का निर्माण राष्ट्रीय संदर्भ के अनुसार होगा। 23 जुलाई 1872 को संपन्न जनरल कौंसिल के अधिवेशन में मार्क्स ने न केवल अनुपस्थितिवादियों (जो लंदन सम्मेलन के नवें प्रस्ताव पर हमला करते थे) की आलोचना की, बल्कि 'इंगलैंड और अमेरिका के मज़दूर वर्ग' के उतने ही खतरनाक प्रस्ताव की आलोचना की 'जो पूंजीपतियों द्वारा राजनीतिक मकसद के लिए अपना इस्तेमाल होने देते' हैं। दूसरे सवाल पर उन्होंने लंदन सम्मेलन में ही

घोषित किया था कि 'राजनीति को सभी देशों की स्थितियों के अनुरूप समायोजित करना होगा'। अगले साल हेग कांग्रेस के तुरंत बाद एम्सटर्डम के एक भाषण में उन्होंने जोर दिया :

> "मज़दूर को किसी न किसी दिन राजनीतिक सत्ता हासिल करनी होगी ताकि ताकि वह श्रम को नए ढर्रे पर संगठित कर सके। यदि मज़दूर वर्ग राजनीति की उपेक्षा और उससे नफरत करने वाले पुराने इसाइयों की तरह पृथ्वी पर अपने राज से वंचित नहीं रहना चाहता तो उसे पुरानी संस्थाओं को टिकाए रखने वाली पुरानी राजनीति को उखाड़ फेंकना होगा। लेकिन हमने यह दावा नहीं किया कि इस लक्ष्य को हासिल करने का तरीका सर्वत्र एक समान होगा।...हम इस बात से इनकार नहीं करते कि ऐसे देश हैं....जहां मज़दूर अपना लक्ष्य शांतिपूर्ण साधनों से हासिल कर सकते हैं। यदि यह सच है तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि महाद्वीप के अधिकांश देशों में बल ही हमारी क्रांति का उत्तोलक होगा। मज़दूर का राज स्थापित करने के लिए हमें किसी न किसी दिन बल का ही सहारा लेना पड़ेगा।"

"इस प्रकार हालांकि भिन्न भिन्न देशों में मज़दूरों की पार्टियां अलग अलग रूपों में सामने आईं फिर भी वे राष्ट्रीय हितों के अधीन नहीं थीं। समाजवाद के लिए संघर्ष को इस तरीके से सीमित नहीं होना चाहिए और खासकर नए संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीयता को सर्वहारा का निर्देशक सिद्धांत बने रहना होगा। इसे राज्य और पूंजीवादी व्यवस्था के जानलेवा संक्रमण के विरुद्ध निरोधक दवा का भी काम करना होगा।"

हेग कांग्रेस के दौरान तीखी बहसों के पहले कई बार वोट पड़े। धारा 7 अ के अंगीकरण के बाद नियमावली में राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने का लक्ष्य शामिल किया गया और इसके लिए आवश्यक उपकरण के बतौर मज़दूरों की पार्टी का संकेत भी दिया गया। इसके बाद जनरल कौंसिल को व्यापक अधिकार सौंपने का फैसला 32 वोटों के समर्थन, 6 के विरोध और 12 की अनुपस्थिति से हुआ। इसके कारण अल्पसंख्या की स्थिति और भी असहनीय हो गई क्योंकि अब जनरल कौंसिल का काम 'इंटरनेशनल के सिद्धांत, नियमावली और सामान्य नियमों का कड़ाई से पालन' की गारंटी करना था तथा उसे 'आगामी कांग्रेस तक के लिए इंटरनेशनल की शाखाओं, प्रभागों, कौंसिलों या फ़ेडरल कमेटियों और फ़ेडरेशनों को स्थगित रखने का अधिकार प्राप्त' था।

इंटरनेशनल के इतिहास में पहली बार इसकी सर्वोच्च कांग्रेस ने न्यूयार्क प्रभाग 12 नामक संगठन को निष्कासित करने के जनरल कौंसिल के फैसले को अनुमोदित किया (47 वोटों का समर्थन और 9 अनुपस्थित)। इसका कारण था 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन वर्ग उन्मूलन के सिद्धांत पर आधारित है और यह किसी पूंजीवादी तबके को शामिल नहीं कर सकती'। बाकुनिन (समर्थन 25, विरोध 6, अनुपस्थित 7) तथा गिलौमे (समर्थन 25, विरोध 9, अनुपस्थित 8) के निष्कासनों पर भी काफी हल्ला हुआ। इसकी अनुशंसा एक जांच आयोग ने की थी जिसने एलायंस फार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी को 'इंटरनेशनल की नियमावली के पूरे विरोधी नियमों से संचालित गुप्त संगठन' बताया था। बहरहाल जूरा फ़ेडरेशन के संस्थापकों में से एक और उसके सबसे सक्रिय सदस्य अधेमार स्विट्ज़बुएबेल (1844-92) के निष्कासन का प्रस्ताव खारिज कर दिया गया (समर्थन 15, विरोध 17 और 7 अनुपस्थित)। अंत में कांग्रेस ने द एलायंस फार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी ऐंड द इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन नामक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित करने के लिए अधिकृत किया जिसमें बाकुनिन के नेतृत्व वाले इस संगठन के इतिहास को खंगालते हुए एक एक देश में उसकी सार्वजनिक और गुप्त गतिविधियों का विश्लेषण किया गया था। एंगेल्स, लाफ़ार्ग और मार्क्स द्वारा लिखित इस दस्तावेज को जुलाई 1873 में फ़्रांसिसी भाषा में प्रकाशित किया गया।

कांग्रेस में इन हमलों का जवाब देने के मामले में विपक्ष एकताबद्ध नहीं था। कुछ विरोध में वोट दे रहे थे तो कुछ अनुपस्थित रह जा रहे थे। बहरहाल आखिरी दिन हेग प्रभाग की ओर से विक्टर डेव (1845-1922) ने संयुक्त घोषणा जारी की जिसमें कहा गया था :

1. हम स्वायत्तता और मज़दूर समूहों के फ़ेडरेशन के समर्थक जनरल कौंसिल के साथ अपना प्रशासनिक संबंध जारी रखेंगे।
2. जिन फ़ेडरेशनों का हम प्रतिनिधित्व करते हैं वे आपस में और इंटरनेशनल की सभी नियमित शाखाओं के साथ प्रत्यक्ष और स्थायी संबंध स्थापित करेंगे।
3. हम सभी फ़ेडरेशनों और प्रभागों का आवाहन करते हैं कि वे अबसे आगामी कांग्रेस तक इंटरनेशनल के भीतर श्रमिक संगठन के आधार के बतौर संघीय स्वायत्तता के सिद्धांतों के विजय की तैयारी करें।

यह वक्तव्य महज एक कार्यनीतिक चाल थी जिसका मकसद उस समय तक अनिवार्य हो चुके विभाजन की जिम्मेदारी से पीछा छुड़ाना था, न कि संगठन को फिर से शुरू करने के लिए गंभीर राजनीतिक पहल लेना। इस मामले में यह कोशिश 'केंद्रवादियों' द्वारा जनरल कौंसिल के अधिकार बढ़ाने के प्रस्तावों की तरह थी तब जबकि वे खुद वैकल्पिक मंच खड़ा करने की योजना बना चुके थे।

6 सितंबर के सुबह के सत्र में इस कांग्रेस की सबसे बड़ी नाटकीय घटना घटी। यह उस इंटरनेशनल का आखिरी काम था जिस रूप में इसे बरसों पहले सोचा और खड़ा किया गया था। एंगेल्स बोलने के लिए खड़े हुए और उपस्थित लोगों को आश्चर्य में डालते हुए उन्होंने प्रस्तावित किया कि 'जनरल कौंसिल का मुख्यालय 1872-73 के लिए न्यूयार्क स्थानांतरित कर दिया जाए और इसका निर्माण अमेरिकन फ़ेडरल कौंसिल के सदस्य करेंगे।' इस तरह मार्क्स और इंटरनेशनल के अन्य 'संस्थापक' अबसे इसके केंद्रीय निकाय के अंग नहीं रहेंगे जिसका निर्माण करने वालों के नाम तक ज्ञात नहीं थे (एंगेल्स ने 7 का प्रस्ताव किया और कहा कि इसे 15 तक विस्तारित किया जा सकता है)। मार्क्स के समर्थक जनरल कौंसिल के सदस्य प्रतिनिधि माल्टमैन बैरी (1842-1909) ने किसी और से बेहतर तरीके से सभाभवन की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है :

> "विक्षुब्धों के चेहरे पर विस्मय और घबराहट फैल गई जब (एंगेल्स ने) अंतिम शब्द बोले।...कुछ देर बाद ही कोई बोलने के लिए खड़ा हो सका। यह तख्तापलट की कार्यवाही थी और प्रत्येक व्यक्ति बगल वाले का मुंह ताक रहा था।"

एंगेल्स ने तर्क दिया कि 'लंदन में आपसी टकराव इस हद तक पहुंच गए हैं कि (जनरल कौंसिल को) अन्यत्र स्थानांतरित करना होगा' और कि दमन की घड़ी में न्यूयार्क सबसे अच्छी जगह होगी। लेकिन ब्लांकीपंथी इस कदम का घोर विरोध कर रहे थे। उनका कहना था कि 'सबसे पहले इंटरनेशनल को सर्वहारा का स्थायी विद्रोही संगठन होना चाहिए' और कि 'जब कोई पार्टी संघर्ष के लिए एकताबद्ध होती है...इसकी कार्यवाही और जोरदार होती है, इसकी नेतृत्वकारी कमेटी और सक्रिय, हथियारबंद तथा मजबूत होती है।' हेग कांग्रेस में मौजूद वाइलैन्त और ब्लांकी के अन्य अनुयायियों ने अपने को ठगा महसूस किया जब उन्होंने देखा कि 'सिर' तो 'अटलांटिक के दूसरे तट की ओर ले जाया जा रहा है (जबकि) शरीर अब भी (यूरोप में) लड़ रहा है।' उनकी मान्यता थी कि 'इंटरनेशनल ने आर्थिक

संघर्षों में अग्रणी भूमिका निभाई थी' इसलिए उसे 'राजनीतिक संघर्ष में भी वही भूमिका निभानी चाहिए' और 'मज़दूरों की अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी पार्टी' में रूपांतरित हो जाना चाहिए। जनरल कौंसिल पर नियंत्रण करना असंभव समझकर वे कांग्रेस से और कुछ दिनों बाद इंटरनेशनल से बाहर चले गए।

बहुसंख्यक कतारों में से भी अनेक ने यह मानकर इसके विरोध में वोट दिया कि न्यूयार्क के लिए स्थानांतरण, कारगर संगठन के बतौर इंटरनेशनल का अंत है। इस फैसले का अनुमोदन सिर्फ़ तीन वोट से हुआ (समर्थन 26, विरोध 23)। ऐसा तभी हो सका जब 9 लोगों ने किसी पक्ष में वोट नहीं दिया और अल्पसंख्या के कुछ सदस्य खुश थे कि जनरल कौंसिल उनकी गतिविधि के केंद्र से दूर जा रही है।

इस कदम के पीछे निश्चय ही मार्क्स का यह मत था कि विरोधियों के हाथों में संकीर्णतावादी संगठन के रूप में इसके इस्तेमाल होने से बेहतर है कि इसे दूर छोड़ आया जाय। न्यूयार्क भेजने से इंटरनेशनल का अंत निश्चित था और लंबे समय तक चलने वाले व्यर्थ के कलहपूर्ण संघर्षों से यह कहीं बेहतर था।

फिर भी जैसा बहुत लोगों ने कहा है उस तरह यह कहना सही नहीं लगता कि इंटरनेशनल के पतन का मुख्य कारण इसकी दो धाराओं के बीच का, या फिर दो व्यक्तियों—मार्क्स और बाकुनिन के बीच का टकराव था भले ही उनका कद कितना भी बड़ा क्यों न रहा हो। इसकी जगह यह अधिक सही लगता है कि इंटरनेशनल के आसपास की दुनिया में हो रहे बदलावों ने उसे पुराना बना दिया। मज़दूर आंदोलन के संगठनों की वृद्धि और उनका रूपांतरण, इटली और जर्मनी के एकीकरण के फलस्वरूप राष्ट्र-राज्य की मजबूती, इटली और स्पेन जैसे देशों में (जहां के समाजार्थिक हालात ब्रिटेन या फ़्रांस से बहुत अलग थे) इंटरनेशनल का विस्तार, ब्रिटिश ट्रेड यूनियन आंदोलन में और भी नरमपंथ की ओर झुकाव, पेरिस कम्यून के बाद दमन—इन सब कारकों ने मिलकर इंटरनेशनल की मूल संरचना को नए समय के लिए अनुपयोगी बना दिया।

इस पृष्ठभूमि में इंटरनेशनल के भीतर की केंद्रापसारी प्रवृत्तियों, उसके और उसके प्रमुख नेताओं के जीवन में आए बदलावों ने भी स्वाभाविक तौर पर एक भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए मार्क्स ने लंदन सम्मेलन को इंटरनेशनल को बचाने वाली घटना समझा लेकिन वह ऐसी साबित नहीं हुई। बल्कि इसके कठोर

रुख ने आंतरिक संकट को बहुत बढ़ा दिया क्योंकि यह मौजूदा मानसिकता को नही समझ सकी या बाकुनिन और उसके समूह के सुदृढ़ीकरण से बचने के लिए आवश्यक पूर्वानुमान लगाने में नाकामयाब रही। उसमें मार्क्स की विजय नाशकारी सिद्ध हुई। इसके जरिए आंतरिक टकरावों को सुलझना था लेकिन वे और भी उलझ गए। बहरहाल मामला तो यह है कि लंदन में लिए गए फैसलों ने उस प्रक्रिया को गति दे दी जो पहले ही शुरू हो चुकी थी और जिसकी वापसी असंभव थी।

इस प्रमुख नायक के बारे में इन तमाम ऐतिहासिक और सांगठनिक बातों के अतिरिक्त और भी बातें हैं जो कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। मार्क्स ने 1871 के लंदन सम्मेलन के एक सत्र में प्रतिनिधियों को चेताया था 'कौंसिल का काम बहुत बढ़ गया है क्योंकि उसे आम सवालों के साथ राष्ट्रीय सवालों से भी निबटना पड़ता है।' अब यह 1864 का इंगलैंड और फ्रांस के सहारे चलने वाला छोटा संगठन नहीं रह गया था। अब इसकी मौजूदगी यूरोप के सभी देशों में थी जिन सबकी खास समस्याएं और विशेषताएं थीं। न केवल सब जगह संगठन आंतरिक टकरावों से अस्त व्यस्त था बल्कि लंदन में नई नई चिंताओं और रंग बिरंगे विचारों का बोझ लेकर आने वाले प्रवासी कम्युनार्डों के आगमन ने जनरल कौंसिल के लिए राजनीतिक संश्लेषण का अपना काम पूरा करना और भी मुश्किल कर दिया था।

इंटरनेशनल के लिए 8 साल तक दिन रात काम करने के चलते मार्क्स बुरी तरह से थक गए थे। वे जानते थे कि पेरिस कम्यून की हार के बाद मज़दूरों की ताकत टूट चली है। इस समय यह तथ्य उनके लिए सबसे महत्व का था। इसलिए उन्होंने तय किया कि बाकी बचे हुए साल वे कैपिटल को पूरा करने में लगाएंगे। जब उन्होंने नीदरलैंड जाने के लिए उत्तरी समुद्र को पार किया होगा तो उन्हें लगा होगा कि प्रत्यक्ष नायक के तौर पर आगामी युद्ध उनकी आखिरी बड़ी लड़ाई होना चाहिए।

1864 की सेंट मार्टिन'स हाल की पहली बैठक में वे खामोश प्रेक्षक रहे थे। वहां से लेकर अब यह आलम था कि इंटरनेशनल के नेता के बतौर उनकी मान्यता न केवल कांग्रेस के प्रतिनिधियों और जनरल कौंसिल में थी बल्कि व्यापक जनता भी उन्हें इंटरनेशनल का नेता मानती थी। इस तरह हालांकि मार्क्स ने इंटरनेशनल के लिए बहुत कुछ किया लेकिन उसने भी मार्क्स की जिंदगी को बदल दिया। इसकी स्थापना से पहले वे राजनीतिक कार्यकर्ताओं के छोटे समूहों में ही जाने

जाते थे। इसके बाद और सबसे अधिक पेरिस कम्यून के बाद और साथ ही 1867 में अपने महाग्रंथ के प्रकाशन के बाद उनकी प्रसिद्धि अनेक यूरोपीय देशों के क्रांतिकारियों में फैल गई–इस हद तक कि अखबार उन्हें 'लाल आतंक का डाक्टर' कहने लगे। इंटरनेशनल में उनकी भूमिका के चलते आयद जिम्मेदारी ने उन्हें अनेकानेक आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों को नजदीक से अनुभव करने का मौका दिया। इससे उन्हें कम्युनिज्म के बारे में और भी सोचने की प्रेरणा मिली तथा उन्होंने पूंजीवाद विरोधी अपने समग्र सिद्धांत को इस अनुभव से गहराई के साथ समृद्ध किया।

11. मार्क्स बनाम बाकुनिन

हेग कांग्रेस के बाद भी कुछ महीनों तक दोनों खेमों के बीच लड़ाई चलती रही लेकिन शायद ही किसी मामले में दोनों के मौजूदा सैद्धांतिक और वैचारिक अंतर इसके केंद्र में रहे हों। मार्क्स अक्सर बाकुनिन के विचारों का मजाक उड़ाते थे, उन्हें 'वर्ग समानता' (एलायंस फार सोशलिस्ट डेमोक्रेसी के 1869 कार्यक्रम के सिद्धांतों के आधार पर) या राजनीतिक अनुपस्थितिवाद के वकील के रूप में पेश करते थे। अपनी ओर से यह रूसी अराजकतावादी, व्यक्तिगत आरोपों और प्रवादों के स्तर पर मुकाबला करना पसंद करता था क्योंकि प्रतिद्वंद्वी की सैद्धांतिक क्षमता का उसमें अभाव था। उसके सकारात्मक विचारों का एकमात्र सबूत ला लिबर्ते (ब्रसेल्स का अखबार) के लिए लिखा एक अधूरा खत है जिसे भेजा नहीं गया, विस्मृत रहा और लगातार चलने वाले झगड़ों में बाकुनिन के समर्थकों के किसी काम का नहीं निकला। इससे 'स्वायत्ततावादियों' के राजनीतिक विचारों का साफ खुलासा होता है :

> "इंटरनेशनल के फ़ेडरेशनों और प्रभागों–के सदस्यों को आपस में जोड़ने वाला नियम एक ही है।.....और वह है श्रम के शोषकों के विरुद्ध आर्थिक संघर्षों में सभी पेशों और सभी देशों के मज़दूरों की अंतर्राष्ट्रीय एकजुटता। मज़दूर वर्ग की स्वतःस्फूर्त कार्यवाही के जरिए उसी एकजुटता का संगठन और पूरी तरह से स्वतंत्र फ़ेडरेशन...ही इंटरनेशनल की वास्तविक और जीवंत एकता का प्राण है। कौन शक कर सकता है कि पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध सर्वहारा की इसी जुझारू एकजुटता के अधिकाधिक व्यापक होते संगठन से ही पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा का राजनीतिक संघर्ष पैदा होना चाहिए? इस सवाल पर

> मार्क्सवादी और हम एकमत हैं। लेकिन इसके बाद वह सवाल आता है जो हमें गहराई से मार्क्सवादियों से अलगा देता है। हमारा सोचना है कि सर्वहारा की नीति अनिवार्य तौर पर क्रांतिकारी होनी चाहिए जिसका एकमात्र और सीधा उद्देश्य राज्य का विनाश होगा। हम समझ नहीं पाते कि अंतर्राष्ट्रीय एकजुटता की बात करते हुए राज्य को संरक्षित रखना कैसे संभव है।....क्योंकि अपनी प्रकृति से ही राज्य उस एकजुटता के साथ घात है और इसीलिए स्थायी युद्ध का कारण है। हम यह भी नहीं समझ पाते कि राज्य के भीतर और उसके जरिए सर्वहारा की मुक्ति या जनसमुदाय की सच्ची आजादी की बात करना कैसे संभव है। राज्य का मतलब ही है अधिकारसंपन्न होना और समस्त अधिकारसंपन्नता के लिए जनसमुदाय की अधीनता और फलतः किसी न किसी शासक अल्पसंख्या के हित में उनका शोषण आवश्यक है। संक्रमण की प्रक्रिया में भी हम संविधान सभा, अस्थायी सरकार या तथाकथित क्रांतिकारी तानाशाही को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि हमारा यकीन है कि जनगण के हाथों में ही क्रांति सच्ची, वास्तविक और ईमानदाराना हो सकती है तथा जब भी यह मुट्ठी भर शासक व्यक्तियों में केंद्रित होगी यह अनिवार्य रूप से और तत्काल प्रतिक्रिया हो जाती है।"

इस तरह साफ है कि किसी भी तरह के राजनीतिक प्राधिकार, खासकर उसके प्रत्यक्ष रूप राज्य, का कट्टर विरोध करने के मामले में बाकुनिन के विचार बहुत कुछ प्रूधों से मिलते जुलते हैं लेकिन उन्हें साझेदारीवादियों के साथ खड़ा कर देना गलत होगा। जहां साझेदारीवादी समस्त राजनीतिक गतिविधि से वस्तुतः अलग रहते थे और इंटरनेशनल के शुरुआती सालों में उनका भारी असर था वहीं स्वायत्ततावादी 'सामाजिक क्रांति की खास राजनीति के पक्ष में, पूंजीवादी राजनीति और राज्य के नाश के पक्ष में' लड़ते हैं—जैसा कि गिलौमे ने हेग कांग्रेस के अपने आखिरी हस्तक्षेप में कहा था। इसलिए माना जाना चाहिए कि वे इंटरनेशनल के क्रांतिकारी घटक थे और कि राजनीतिक सत्ता, राज्य और नौकरशाही के सवालों पर उनके विचार मजेदार आलोचनात्मक योगदान प्रतीत होते हैं।

फिर स्वायत्ततावादियों की 'नकारात्मक राजनीति' जिसे वे कार्यवाही का एकमात्र संभव रूप समझते थे वह कैसे केंद्रवादियों की 'सकारात्मक राजनीति' से अलग थी? इटालियन फ़ेडरेशन के प्रस्ताव पर 15-16 सितंबर 1872 को संपन्न सेंट-इमिएर की इंटरनेशनल कांग्रेस, जिसमें हेग से लौटते हुए अन्य प्रतिनिधियों ने

भाग लिया था, के प्रस्तावों में कहा गया कि 'सभी राजनीतिक संगठन प्रभुत्व के संगठन ही हो सकते हैं। वे किसी एक वर्ग को लाभ पहुंचाते हैं और जनगण के लिए नुकसानदेह होते हैं। अगर सर्वहारा सारी राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करना चाहता है तो वह खुद प्रभुत्वशाली और शोषक वर्ग हो जाएगा'। इसी कारण 'सर्वहारा का पहला काम समस्त सत्ता का नाश है' और 'इस नाश के लिए किसी भी तथाकथित अस्थायी और क्रांतिकारी राजनीतिक सत्ता का गठन केवल और बड़ा धोखा साबित होगा तथा सर्वहारा के लिए उतना ही खतरनाक होगा जितना मौजूदा कोई भी सरकार है'। बाकुनिन ने एक और अधूरे लेख 'द इंटरनेशनल ऐंड कार्ल मार्क्स' में जैसा जोर देकर कहा है कि इंटरनेशनल का कार्यभार 'राज्य और पूंजीवादी दुनिया से बाहर की राजनीति' में सर्वहारा का नेतृत्व करना था इसलिए उसके कार्यक्रम का सच्चा आधार 'सहज सरल-पूंजीवाद के विरुद्ध मज़दूर के आर्थिक संघर्ष में एकजुटता का निर्माण' होना चाहिए। असल में तो अगर तमाम बदलावों पर ध्यान दिया जाए तो सिद्धांतों की यह घोषणा इंटरनेशनल के मूल लक्ष्य के अधिक करीब थी और जिस दिशा का संकेत कर रही थी वह लंदन सम्मेलन के बाद मार्क्स और जनरल कौंसिल द्वारा अपनाई गई दिशा से बहुत अलग थी।

सिद्धांतों और लक्ष्यों के इस गंभीर विरोध ने हेग का माहौल तैयार किया था। जहां बहुसंख्या राजनीतिक सत्ता पर जीत को 'सकारात्मक' समझ रही थी वहीं स्वायत्ततावादी, राजनीतिक पार्टी को ऐसे उपकरण के बतौर पेश कर रहे थे जो अनिवार्य रूप से पूंजीवादी संस्थाओं के मातहत रहती है और कम्युनिज्म की मार्क्स की धारणा को भोंड़े तरीके से लासालीय फ़ोक्सस्टाट के समरूप बता रहे थे जबकि मार्क्स उसका अनथक विरोध करते थे। बहरहाल कुछ ही समय बाद जब शत्रुता के उपरांत विवेक पैदा हुआ तो बाकुनिन और गिलौमे ने माना कि दोनों पक्षों की चाहत एक ही है। मार्क्स ने एंगेल्स के साथ लिखी इंटरनेशनल में कल्पित फूटें में दर्ज किया कि समाजवादी समाज की एक पूर्वशर्त राजसत्ता का उन्मूलन है :

> "सारे समाजवादी अराजकतावाद को इस कार्यक्रम के रूप में देखते हैं—सर्वहारा आंदोलन का लक्ष्य यानी वर्ग उन्मूलन जब हासिल हो जाता है तो राजसत्ता लुप्त हो जाती है जो उत्पादकों की बहुसंख्या को मुट्ठी भर शोषक अल्पसंख्या के अधीन रखने का काम करती है और फिर सरकार के काम महज प्रशासनिक काम बनकर रह जाते हैं।"

दोनों के बीच अंतर असमाधेय इसलिए हो जा रहा था क्योंकि स्वायत्ततावादी जोर दे रहे थे कि इस लक्ष्य को तुरंत साकार किया जाए। मार्क्स की नजर में चूंकि स्वायत्ततावादी इंटरनेशनल को राजनीतिक संघर्ष का औजार मानने की जगह भविष्य के ऐसे आदर्श समाज का माडल मानते थे जहां किसी तरह का प्राधिकार नहीं होगा इसलिए बाकुनिन और उनके समर्थक

> "सर्वहारा की कतारों में अराजकता को ऐसा अमोघ अस्त्र समझते थे जो शोषकों के हाथों में सामाजिक और राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण को खत्म करता है। इसी बहाने की आड़ में (वे) इंटरनेशनल से संगठन की जगह पर अराजकता को स्थापित करने के लिए कहते हैं जब पुरानी दुनिया उसे कुचल डालने का रास्ता खोज रही है।"

इस प्रकार हालांकि उनके बीच समाजवादी समाज में वर्गों और राज्य की राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकने की जरूरत के बारे में सहमति थी फिर भी दोनों पक्ष इस बदलाव को ले आने के लिए आवश्यक रास्ते और सामाजिक ताकतों के बुनियादी मुद्दों पर विपरीत बातें कह रहे थे। जहां मार्क्स के लिए सर्वोत्कृष्ट क्रांतिकारी कर्ता खास वर्ग, औद्योगिक सर्वहारा था वहीं बाकुनिन इसकी आशा 'जनता की विशाल भीड़', तथाकथित 'लंपट सर्वहारा' से करते थे जो 'पूंजीवादी सभ्यता से लगभग अदूषित होने के कारण अपने आंतरिक जीवन और अपनी आकांक्षाओं में, सामूहिक जीवन की तमाम आवश्यकताओं और तकलीफों में भविष्य के समाजवाद के सभी बीज लिए रहता है'। कम्युनिस्ट मार्क्स ने सीखा था कि सामाजिक रूपांतरण के लिए खास ऐतिहासिक परिस्थितियों, प्रभावशाली संगठन और जनता में वर्ग चेतना के निर्माण की दीर्घकालीन प्रक्रिया की जरूरत होती है वहीं अराजकतावादी बाकुनिन को यकीन था कि आम जन, तथाकथित 'भीड़' की अंतःचेतना 'अजेय और न्यायोचित' तो होती ही है, 'सामाजिक क्रांति के आरम्भ और उसकी विजय' के लिए भी अपने आपमें पर्याप्त होती है।

दूसरी असहमति का संबंध समाजवाद की प्राप्ति के उपकरणों से था। बाकुनिन की ज्यादातर लड़ाकू गतिविधियों में अधिकतर बुद्धिजीवियों की छोटी 'गुप्त सोसाइटियों' का निर्माण (या निर्माण की कल्पना) शामिल था जिन्हें वे 'समर्पित, ऊर्जावान, प्रतिभाशाली व्यक्तियों, सबसे आगे बढ़कर जनता के सच्चे दोस्तों को लेकर निर्मित क्रांतिकारी सेना' कहते थे जो आम विद्रोह की तैयारी करेंगे और क्रांति को सचालित करेंगे। इसके उलटा मार्क्स मज़दूर वर्ग द्वारा खुद

की मुक्ति में यकीन करते थे और मानते थे कि 'सर्वहारा आंदोलन के विकास से' गुप्त सोसाइटियों का टकराव होगा 'क्योंकि मज़दूरों को शिक्षित करने की बजाए ये सोसाइटियां उन्हें ऐसे मनमाने, रहस्यमय नियमों के अधीन ले आती हैं जो नियम उनकी स्वतंत्रता को नियंत्रित करते हैं और उनकी विवेक-शक्ति को विकृत करते हैं'। रूस से निर्वासित बाकुनिन मज़दूर वर्ग की सीधे क्रांति को प्रोत्साहित न करने वाली सभी राजनीतिक कार्यवाहियों का विरोध करता था जबकि लंदन में स्थायी आवास वाले राज्यविहीन मार्क्स सामाजिक सुधारों और आंशिक लक्ष्यों के लिए गोलबंदी से परहेज नहीं करते थे लेकिन इस बात को पूरी तरह मानते थे कि इनसे पूंजीवादी उत्पादन पद्धति को खत्म करने का मज़दूर वर्ग का संघर्ष मजबूत होना चाहिए न कि उसे व्यवस्था में समाहित हो जाना चाहिए।

इन अंतरों को क्रांति के बाद भी समाप्त नहीं होना था। बाकुनिन की नजर में 'राज्य का खात्मा सर्वहारा की आर्थिक मुक्ति की पूर्वशर्त या अनिवार्य सहचर' था। मार्क्स की नजर में राज्य न तो एक दिन में गायब हो सकता था न उसे गायब होना चाहिए। दिसंबर 1873 में अलमानाको रिपब्लिकानो में पहली बार प्रकाशित अपने लेख 'पोलिटिकल इनडिफ़रेंटिज्म' में उन्होंने इटली के मज़दूर आंदोलन में अराजकतावादियों के वर्चस्व को यह कहते हुए चुनौती दी कि

> "अगर मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष हिंसक रूप ग्रहण कर लेता है और अगर मज़दूर पूंजीपति वर्ग की तानाशाही की जगह पर अपनी क्रांतिकारी तानाशाही स्थापित करते हैं तो (बाकुनिन के मुताबिक) यह सिद्धांत से गद्दारी का भयंकर कृत्य होगा क्योंकि अपनी रोजमर्रा की कष्टकर सांसारिक जरूरतों को पूरा करने और पूंजीपति वर्ग के प्रतिरोध को कुचल देने के लिए उन्हें अपने हथियार रख देने और राज्य को उखाड़ फेंकने की बजाए राज्य को क्रांतिकारी और संक्रमणकालीन रूप प्रदान करना चाहिए।"

बहरहाल इस बात को मानना होगा कि हालांकि बाकुनिन कभी कभी पूंजीवादी और सर्वहारा सत्ता के बीच फ़र्क करने से उत्तेजक इनकार करते हैं लेकिन इसके बावजूद उन्होंने पूंजीवाद और समाजवाद के बीच के तथाकथित 'संक्रमण काल' के खतरों–खासकर क्रांति के बाद नौकरशाहाना पतन के खतरों को पहले ही देख लिया था। 1870 और 1871 में बाकुनिन ने 'क्नाउटो-जर्मेनिक एम्पायर ऐंड द सोशल रेवोल्यूशन' लिखा लेकिन वह अधूरी रही। उसमें लिखा :

"हमें बताया जाता है कि मार्क्स के जनता के राज्य में कोई विशेषाधिकार-संपन्न वर्ग नहीं होगा। सब समान होंगे, न केवल कानूनी और राजनीतिक दृष्टि से बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी।...इसलिए कोई विशेषाधिकार-संपन्न वर्ग नहीं होगा लेकिन सरकार होगी और ध्यान दीजिए कि यह अत्यंत जटिल सरकार होगी जो आजकल की सभी सरकारों के काम की तरह केवल जनता पर राजनीतिक शासन और प्रशासन से ही संतुष्ट नहीं होगी, बल्कि वह उनका आर्थिक शासन भी करेगी। इसके तहत वह उत्पादन और संपत्ति का न्यायपूर्ण वितरण, जमीन की खेती, कारखानों की स्थापना और उनका विकास, वाणिज्य का संगठन और दिशा निर्देश और आखिरकार राज्य नामक एकमात्र बैंक के जरिए उत्पादन के लिए पूंजी निवेश का काम अपने हाथों में केंद्रित कर लेगी।...यह वैज्ञानिक बौद्धिकता का सर्वाधिक कुलीन, तानाशाहीपूर्ण, उद्दंडता से भरा हुआ और सभी सत्ताओं के प्रति अवमानना से भरा हुआ शासन तंत्र होगा। उसमें एक नया वर्ग होगा, वास्तविक और नकलची वैज्ञानिकों और विद्वानों का एक नया पदानुक्रम होगा तथा दुनिया, ज्ञान के नाम पर शासन करने वाली अल्पसंख्या और विशाल अज्ञानी बहुसंख्या के बीच विभाजित होगी।...प्रत्येक राज्य चाहे वह सर्वाधिक गणतंत्रात्मक और सर्वाधिक लोकतांत्रिक राज्य ही क्यों न हो,...सारतः ऊपर से जनता को शासित करने वाली मशीनें ही होते हैं। यह शासन ऐसी प्रतिभाशाली और फलतः विशेषाधिकार संपन्न अल्पसंख्या के जरिए चलाया जाता है जो जनता के वास्तविक हितों को जनता से भी अधिक अच्छी तरह से जानने का दावा करते हैं।"

अंशतः अर्थशास्त्र के अपने अल्पज्ञान के कारण बाकुनिन द्वारा संकेतित संघीयतावादी रास्ता सचमुच का कोई उपयोगी निर्देश नहीं दे पाता कि भविष्य के समाजवादी समाज के सवाल को कैसे समझा जाए। लेकिन उसकी आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि आगामी बीसवीं सदी के कुछ नाटकों के संकेत दे जाती है।

12. मार्क्स के बाद : 'केंद्रीयतावादी' और 'स्वायत्ततावादी' इंटरनेशनल

अब इंटरनेशनल को दुबारा कभी पहले की तरह का नहीं होना था। 1864 में पैदा हुए इस महान संगठन ने 8 सालों तक हड़तालों और संघर्षों का सफलतापूर्वक समर्थन किया, पूंजीवाद विरोधी कार्यक्रम अपनाया और सारे यूरोपीय देशों में अपनी मौजूदगी दर्ज कराई और वही हेग कांग्रेस में आखिरकार बिखर गया।

बहरहाल मार्क्स के कदम पीछे खींचने के बावजूद कहानी खत्म नहीं हुई। काफी सिकुड़े हुए आकार में और पुरानी राजनीतिक आकांक्षाओं तथा योजना बनाने और लागू करने की क्षमता से हीन दो समूहों का उदय हुआ। उनमें एक था पिछली कांग्रेस से उपजा 'केंद्रीयतावादी' बहुसंख्यक समूह जो जनरल कौंसिल के राजनीतिक नेतृत्व में संगठन का समर्थक था। दूसरा था 'स्वायत्ततावादी' या 'संघीयतावादी' अल्पसंख्यक समूह जो प्रभागों के लिए निर्णय लेने के मामले में पूर्ण स्वायत्तता का हामी था।

1872 में इंटरनेशनल की ताकत अभी क्षीण नहीं हुई थी। अतीतकाल से ही असमान विकास इसकी विशेषता रही थी। वही विशेषता फिर से दिखाई पड़ी जब कुछ देशों (मसलन ब्रिटेन) में इसकी गिरावट की भरपाई कुछ अन्य देशों (सबसे अधिक स्पेन और इटली) में इसके विस्तार ने कर दी। हेग के नाटकीय नतीजे ने संगठन को विभाजित कर दिया जिसके चलते खासकर 'केंद्रवादी' खेमे के अनेक कार्यकर्ताओं को महसूस हुआ कि मज़दूर आंदोलन का एक महत्वपूर्ण अध्याय बंद हो चला। नार्थ अमेरिकन फ़ेडरेशन के साथ यूरोप की बहुत कम ताकतों ने ही न्यूयार्क स्थित नई जनरल कौंसिल का साथ दिया। ये थे–स्विट्ज़रलैंड में रोमान्डे फ़ेडरेशन और कुछ जर्मन भाषी प्रभाग जो दोनों ही बेकर की अथक पहल पर आधारित थे, जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी ने बेहिचक लेकिन मुश्किल से दृश्य समर्थन दिया, नए खुले आस्ट्रियाई प्रभाग जिन्होंने अदृश्य जर्मनों के विपरीत अपने सदस्यों के चंदे से कुछ धन एकत्र करके भेजा तथा डेनमार्क और पुर्तगाल के दूरस्थ प्रभाग। बहरहाल स्पेन, इटली और नीदरलैंड्स में बहुत कम ने नए निर्देशों का पालन किया। आयरलैंड में अभी संगठन जड़ नहीं पकड़ सका था। 1873 के आते आते फ़्रांस में इंटरनेशनल का कोई प्रभाग नहीं बचा। ब्रिटेन भी था लेकिन वहां हेग कांग्रेस के बहुत पहले से निजी झगड़े चल रहे थे और उनके कारण नवंबर 1872 में ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल आपस में झगड़ने वाले दो समूहों में बंट गई जिनमें से प्रत्येक समूह देश में इंटरनेशनल का प्रतिनिधि होने का दावा करता था। 16 प्रभागों के नाम पर काम करने वाले हेल्स को हर्मान युंग (1830-1901) और थामस मोटरहेड (1825-84) जैसे इंटरनेशनल के नेताओं का समर्थन प्राप्त था, उन्होंने न्यूयार्क स्थित जनरल कौंसिल को अस्वीकार कर दिया और ब्रिटिश फ़ेडरेशन की ओर से जनवरी 1873 में नई कांग्रेस आयोजित किया। हेल्स और इकारियस दोनों ने कुछ अद्भुत कलाबाजियां दिखाईं। हालांकि उनकी निष्ठा सुधारवाद में थी और चुनाव लड़ने के पक्ष में वे बोलते थे तथा उनकी सोच

इंटरनेशनल को ट्रेड यूनियन समर्थन वाली ऐसी राजनीतिक पार्टी में बदलने की थी जो पूंजीपतियों के उदारवादी खेमे के साथ मोर्चा बनाए लेकिन वे आधिकारिक रूप से गिलौमे और बाकुनिन के अनुयायी अनुपस्थितिवादियों के साथ खड़ा हुए। इन घटनाओं के उत्तर में एंगेल्स ने दो सर्कुलर जारी किए जिनमें हेग में लिए गए फैसलों को मान्यता दी गई थी। इन पर मानचेस्टर तथा 'आधिकारिक' ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल के महत्वपूर्ण नेताओं के और जनरल कौंसिल के मशहूर पूर्व सदस्य ह्यूपों तथा फ्रेडरिक लेसनर (1825-1910) के दस्तखत थे। कौंसिल की कांग्रेस जून में संपन्न हुई लेकिन उसमें भाग लेने वालों को इस कड़वी सच्चाई का सामना करना पड़ा कि जनरल कौंसिल के न्यूयार्क चले जाने के बाद (जिसे हर कोई संगठन के अंत के बतौर समझ रहा था) ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों को अब कोई रुचि नहीं रह गई थी। इस तरह दोनों ही खेमों के साथ समान घटना हुई और वह यह कि उनका तेजी से पतन हुआ।

'केंद्रवादियों' की कांग्रेस उसी जेनेवा नगर में हुई जिसमें इंटरनेशनल की पहली कांग्रेस संपन्न हुई थी। बेकर की कोशिशों के चलते इसमें 30 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें (पहली बार) दो महिलाएं भी शामिल हुईं। लेकिन इनमें से 15 तो जेनेवा से ही थे। अन्य देशों के प्रभागों के प्रतिनिधि जर्मनी, बेल्जियम और आस्ट्रिया-हंगरी से एक एक प्रतिनिधि ही थे। यूरोप में गोलबंदी में घटोत्तरी देखकर जनरल कौंसिल ने न्यूयार्क से प्रतिनिधि न भेजने का फैसला किया और ब्रिटिश फ़ेडरेशन द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि सेराइलेर जेनेवा तक यात्रा न कर सके। असल में तो केंद्रवादी इंटरनेशनल का यही अंत था।

अटलांटिक के उस पार सोर्ज मशाल जलाए रखने के लिए कड़ी कोशिश कर रहे थे लेकिन वहां नार्थ अमेरिकन फ़ेडरेशन खत्म होने की कगार पर थी। सदस्यता के घटकर 1000 से कम रह जाने के चलते आर्थिक स्थिति खराब थी (उनमें से कुछ ही बकाया चुकाते थे)। इसके चलते चिट्ठियों के लिए टिकट खरीदना भी मुश्किल होता जा रहा था। अब यह केवल अमेरिका से जुड़े मसलों तक सीमित रह गई थी। अमेरिकी मज़दूर या तो इसके प्रति उदासीन रहते या शत्रुभाव रखते। नवंबर 1873 में इसने जो मेनिफ़ेस्टो टु द वर्किंग पीपुल आफ़ नार्थ अमेरिका जारी किया था उसके प्रति भी यही रुख रहा। सोर्ज ने महासचिव के पद से इस्तीफ़ा दे दिया और उसके बाद से ढाई सालों का इसका इतिहास एक तरह से पूर्वघोषित मृत्यु की ही दास्तान है। आखिरकार 15 जुलाई 1876 को अंत आ ही गया जब

365 सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले दस प्रतिनिधियों की बैठक हुई और इसके तुरंत बाद वे सेंटेनियल एक्जिबिशन नामक पहले अमेरिकी वर्ल्ड फ़ेयर के साथ आयोजित वर्किंगमेन'स पार्टी आफ़ द यूनाइटेड स्टेट्स की स्थापना कांग्रेस में भाग लेने चल दिए।

हालांकि 'केंद्रीयतावादी' संगठन एकाध देशों में महज कुछ दिनों तक चला और सिद्धांत के क्षेत्र में वे आगे कोई योगदान न कर सके लेकिन दूसरी ओर स्वायत्ततावादी आगामी कुछ वर्षों तक वास्तविक और सक्रिय अस्तित्व बनाए रखने में कामयाब रहे। स्विस, इतालवी, स्पेनी और फ़्रांसिसी लोगों की भागीदारी वाली सेंट-आइमर कांग्रेस में यह माना गया कि 'किसी को यह अधिकार नहीं कि वह स्वायत्त फ़ेडरेशनों और प्रभागों को जिसे वे सर्वोत्तम समझें, उस राजनीतिक दिशा और आचरण को खुद के लिए निर्धारित करने और लागू करने के निर्विवाद अधिकार से उन्हें वंचित करे'। इंटरनेशनल के भीतर संघीय स्वायतता का यही विकल्प 'दोस्ती, एकजुटता और आपसी रक्षा का गठबंधन' मुहैया कराता है। ये विचार गिलौमे के थे। बाकुनिन ने इसे थोड़ा और सैद्धांतिक जामा पहनाया होता लेकिन उसके विपरीत इस युवा किंतु समझदार स्विस कार्यकर्ता की नजर जूरा, स्पेन और इटली के परे समर्थन बढ़ाने और लंदन की लाइन के विरोधी सभी फ़ेडरेशनों को अपने पक्ष में कर लेने पर टिकी थी। उसकी कार्यनीति काम आई। नए इंटरनेशनल के जन्म की तैयारी बड़ी बड़ी घोषणाओं के जरिए बात थोपे बिना सावधानी से करनी थी।

अगले कुछ महीनों में जुड़ने के प्रस्ताव आने शुरू हुए। स्वायत्ततावादियों का गढ़ स्पेन बना रहा जहां प्राक्सेडेस मातेओ सगास्ता (1825-1903) द्वारा संचालित दमन संगठन को फलने फूलने से नहीं रोक सका। दिसंबर 1872 और जनवरी 1873 के बीच संपन्न इसकी कोर्डोबा संघीय कांग्रेस तक इसमें 50 फ़ेडरेशन शामिल हो चुके थे जिनके 300 से अधिक प्रभाग और 25000 से अधिक कुल सदस्य थे (बार्सिलोना में 7500)। 1872 के उत्तरार्ध के बाद नए देशों में भी स्वायत्ततावादियों का समर्थन बढ़ा। दिसंबर में बेल्जियन फ़ेडरेशन की ब्रसेल्स कांग्रेस ने हेग कांग्रेस के प्रस्तावों को शून्य घोषित कर दिया, न्यूयार्क स्थित जनरल कौंसिल को मान्यता नहीं दी और सेंट-आइमर समझौते पर दस्तखत कर दिए। जनवरी 1873 में हेल्स और इकारियस के नेतृत्व में ब्रिटेन के विद्रोहियों ने भी यही राह पकड़ी और अगले महीने डच फ़ेडरेशन भी उनके साथ मिल गई।

स्वायत्ततावादियों के संपर्क फ़्रांस, आस्ट्रिया और संयुक्त राज्य में भी थे और वे नए इंटरनेशनल में बहुमत में आ गए फिर भी असलियत में यह मोर्चा नानाविध सिद्धांतों का जखीरा बना रहा। इसमें शामिल थे–गिलौमे और श्वाइट्ज़गेबेल (बाकुनिन सार्वजनिक जीवन से 1873 में अलग हो गए और 1876 में उनका देहांत हो गया) के नेतृत्व में स्विस अराजक-सामूहिकतावादी, डि पाएपे के नेतृत्व में बेल्जियन फ़ेडरेशन जिसके लिए जनता का राज्य (फ़ोक्सस्टाट) को सभी सार्वजनिक सेवाओं के प्रबंधन सहित अधिक शक्ति और क्षमता मुख्य बात थी, अतिक्रांतिकारी इतालवी जिन्होंने निश्चित असफलता वाली आम विद्रोह की दृष्टि अपनाई ('कर्म का प्रचार') और चुनावों में भागीदारी तथा प्रगतिशील पूंजीवादी ताकतों के साथ एकता के हामी ब्रिटिश यूनियन नेता। 1874 में जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स के लासालपंथियों से भी संपर्क स्थापित किया गया।

ऊपर वर्णित परिदृश्य बताता है कि हेग कांग्रेस में विभाजन के लिए जिम्मेदार प्रधान मतभेद न तो राज्य के साथ समझौता करने के लिए तैयार समूह और क्रांति के लिए अधिक इच्छुक सैद्धांतिक पक्ष के बीच था न ही राजनीतिक कार्यवाही के समर्थकों और इसके विरोधियों के बीच था। इसकी बजाए जनरल कौंसिल के प्रति मूलगामी और व्यापक विरोध का मुख्य कारण 1871 के लंदन सम्मेलन में हड़बड़ी में लिए गए फैसले थे। जूरा और स्पेनी फ़ेडरेशनों तथा नवगठित इतालवी फ़ेडरेशन ने मज़दूर वर्गीय राजनीतिक पार्टी बनाने के मार्क्स के आवाहन का कभी समर्थन नहीं किया होता। सबसे बड़ी बात कि उन देशों की समाजार्थिक स्थितियों में यह अकल्पनीय था। बहरहाल थोड़ा लचीला रुख अपनाने से बेल्जियन लोगों का समर्थन बरकरार रहता जो इंटरनेशनल और डच फ़ेडरेशन जैसे नवगठित फ़ेडरेशनों के बीच अनेक वर्षों तक संतुलन बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभा रहे थे। आंतरिक टकराव थोड़ा कम तीखे होते तो ब्रिटेन में विभाजन को रोका जा सकता था जिसका संबंध नीतियों पर असहमति के मुकाबले व्यक्तित्वों की टकराहट से अधिक था। आखिरी बात : जैसा कुछ स्वायत्ततावादियों ने भांप लिया था कि जनरल कौंसिल को न्यूयार्क स्थानांतरित करने के फैसले ने 1872 के बाद उन्हें अधिक राजनीतिक अवसर दिया और उनकी दावेदारी बढ़ाने में मदद की। बहरहाल मार्क्स की नजर में 'प्रथम' इंटरनेशनल ने अपना ऐतिहासिक कार्यभार पूरा कर लिया था इसलिए उसके समाहार का समय आ गया था।

स्वायत्ततावादियों की 'पहली' या उनके कथनानुसार 'छठवीं' (इंटरनेशनल की

पांच की निरंतरता में) कांग्रेस जेनेवा में 1873 में 1 से 6 सितंबर तक हुई। इसमें बेल्जियम, स्पेन, फ़्रांस, इटली, ब्रिटेन, नीदरलैंड और स्विट्ज़रलैंड से 32 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह कांग्रेस केंद्रवादियों की कांग्रेस से एक सप्ताह पहले हुई और इसने घोषित किया कि 'इंटरनेशनल में एक नए युग की शुरुआत' हुई है। सर्वसम्मति से इसने जनरल कौंसिल को भंग करने का फैसला किया और इंटरनेशनल के इतिहास में पहली बार किसी कांग्रेस में अराजक समाज के सवाल पर बहस हुई। सामाजिक क्रांति की प्राप्ति के हथियार के बतौर आम हड़ताल के विचार को समाहित करके इंटरनेशनल के वैचारिक-राजनीतिक शस्त्रागार को समृद्ध किया गया। इस प्रकार अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद के नाम से मशहूर होने वाली प्रवृत्ति की आधारशिला रख दी गई।

अगली कांग्रेस ब्रसेल्स में 1874 में 7 से 13 सितंबर तक हुई। इसमें सोलह प्रतिनिधि थे–ब्रिटेन से एक (इकारियस), स्पेन से एक और शेष सभी बेल्जियम से थे। इन चौदह में से दो को फ़्रांसिसी (पेरिस) या इतालवी (पालेर्मो) प्रभाग का जनादेश प्राप्त था तथा अन्य दो बेल्जियम में रह रहे लासालपंथी जर्मन प्रवासी थे। गिलौमे ने बताया कि इनमें से एक कार्ल फ़्राह्मे दरअसल जनरल एसोसिएशन आफ़ जर्मन वर्कर्स के प्रतिनिधि थे। समाजवाद के नक्शे पर अराजकतावादी और लासालपंथी विपरीत ध्रुव पर अवस्थित थे इस तथ्य के बावजूद गिलौमे ने उनकी उपस्थिति को प्रोत्साहित किया और इसके लिए 1873 की जेनेवा कांग्रेस द्वारा अनुमोदित नए नियमों का हवाला दिया जिनके तहत प्रत्येक देश के मज़दूरों को यह आजादी थी कि अपनी मुक्ति हासिल करने के सर्वोत्तम साधन का वे निर्णय करें। कुल मिलाकर यह इंटरनेशनल अधिकांशतः ऐसी जगह बन गई जहां अत्यंत कमतर (अल्पतम प्रतिनिधित्व वाले) नेता मिलते थे और मज़दूरों की भौतिक स्थितियों और उन्हें बदलने के लिए आवश्यक कार्यवाहियों के बारे में अमूर्त बहसें चलाते थे। 1874 में बहस अराजकतावाद और जनता का राज्य (फ़ोक्सस्टाट) के बीच थी और इंटरनेशनल की किसी कांग्रेस में 3 साल बाद भाग लेने वाला डि पाएपे इसमें प्रधान नेता था। अपने एक भाषण में उसने कहा कि 'स्पेन में, इटली के कुछ हिस्सों में और जूरा में हम अराजकता के समर्थन में हैं (लेकिन) जर्मनी में, नीदरलैंड्स में, ब्रिटेन में और अमेरिका में मज़दूर राज्य चाहते हैं (बेल्जियम में दोनों के बीच झूल रहे हैं)'। एक बार फिर कोई सामूहिक फैसला नहीं हो सका और कांग्रेस सर्वसम्मति से सहमत हुई कि 'प्रत्येक देश में किसी भी फ़ेडरेशन और

समाजवादी लोकतांत्रिक पार्टी को यह तय करना है कि कौन सी राजनीतिक दिशा का वह अनुसरण करना चाहती है'।

आठवीं कांग्रेस 1876 में 26 से 30 अक्टूबर के बीच बेर्नी में हुई और उसने भी इसी लाइन का अनुसरण किया। इसमें 28 प्रतिनिधि थे जिनमें 19 स्विस (जूरा फ़ेडरेशन से 17), 4 इतालवी, स्पेन और फ़्रांस से दो दो तथा बेल्जियम और नीदरलैंड्स से अकेले डि पाएपे। कार्यवाही से डि पाएपे और गिलौमे के रुख में आपसी विरोधिता का पता चलता है लेकिन अंत में बेल्जियन फ़ेडरेशन के एक प्रस्ताव पर उनमें सहमति बन गई। प्रस्ताव था कि अगले साल विश्व समाजवादी कांग्रेस आयोजित की जाए जिसका आमंत्रण 'यूरोप की समाजवादी पार्टियों के समस्त गुटों' को भेजा जाए।

बहरहाल इस आयोजन से पहले ही इंटरनेशनल की अंतिम कांग्रेस 1877 में 6 से 8 सितंबर के बीच वेरविएर्स में संपन्न हुई। इसमें 22 प्रतिनिधि जमा हुए–13 बेल्जियम से, स्पेन, इटली, फ़्रांस और जर्मनी से दो दो तथा जूरा फ़ेडरेशन के प्रतिनिधि गिलौमे। इनके अतिरिक्त समाजवादी समूहों से तीन पर्यवेक्षक भी थे जिनका काम केवल सलाह देना था। इन्हीं में से एक पीटर क्रोपाटकिन (1842-1921) भी थे जो बाद में अराजकतावादी कम्युनिज्म के संथापक बने। कांग्रेस में सक्रिय भागीदारी अराजकतावादियों की ही दिखाई पड़ी। इनमें अंद्रीया कोस्ता (1851-1910) जैसे भी कुछ लोग थे जो जल्दी ही समाजवाद की ओर आ गए। इस प्रकार स्वायत्ततावादी इंटरनेशनल ने भी अपना इतिहास खत्म किया। इसका जनाधार केवल स्पेन में था। उनके परिप्रेक्ष्य के मुकाबले समूचे यूरोप के मज़दूर आंदोलन की यह अनुभूति भारी पड़ी कि संगठित पार्टियों के जरिए राजनीतिक संघर्ष में भाग लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वायत्ततावादी प्रयोग के खात्मे के बाद अराजकतावादियों और समाजवादियों में भी अलगाव निश्चित था।

13. नया इंटरनेशनल

1877 में घेन्ट नगर में यूनिवर्सल सोशलिस्ट कांग्रेस संपन्न हुई। इसमें पहले कभी के मुकाबले अधिक देशों का प्रतिनिधित्व हुआ। नौ देशों (फ़्रांस, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, ब्रिटेन, स्पेन, इटली, हंगरी, रूस और बेल्जियम) के प्रतिनिधियों का लगभग 3000 मज़दूरों ने स्वागत किया। इनमें से कुछ प्रतिनिधियों को किसी अन्य देश के

संगठन का (डेनमार्क, संयुक्त राज्य और पहली बार ग्रीस तथा मिस्र के मज़दूर समूहों) भी अतिरिक्त जनादेश हासिल था। इंटरनेशनल के डि पाएपे, लीबक्नेख्त, फ़्रांकेल, गिलौमे, हेल्स और अन्य ऐतिहासिक नेता उपस्थित थे और यूरोपीय मज़दूर आंदोलन की एक समूची पीढ़ी के लिए संगठन के महत्व की गवाही दे रहे थे।

डि पाएपे और आगामी बेल्जियन समाजवादी नेता लुई बरट्रांड (1856-1943) द्वारा लिखित समापन वक्तव्य 'मेनिफ़ेस्टो टु वर्कर्स आर्गेनाइजेशंस ऐंड सोसाइटीज इन आल कंट्रीज' में कांग्रेस ने 'जनरल यूनियन आफ़ द सोशलिस्ट पार्टी' स्थापित करने का आवाहन किया। बहुसंख्यक प्रतिनिधियों ने एक सहमति पत्र पर भी दस्तखत किया :

> "चूंकि सामाजिक मुक्ति और राजनीतिक मुक्ति अविभाज्य हैं इसलिए सर्वहारा को संपत्तिशाली वर्गों की समस्त पार्टियों के विरोध में अलग पार्टी में संगठित होना चाहिए और उन सभी राजनीतिक साधनों से खुद को लैस करना चाहिए जो उसकी मुक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक हों। चूंकि संपत्तिशाली वर्गों के प्रभुत्व के विरोध में चलने वाला संघर्ष का दायरा केवल स्थानीय या राष्ट्रीय होने की बजाए विश्वव्यापी होगा इसलिए इस संघर्ष में सफलता विभिन्न देशों के संगठनों की सामंजस्यपूर्ण और एकताबद्ध कार्यवाही पर निर्भर है। घेन्ट में यूनिवर्सल सोशलिस्ट कांग्रेस के निम्नहस्ताक्षरित प्रतिनिधि फैसला करते हैं कि जिन संगठनों का वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं वे संगठन आपसी औद्योगिक और राजनीतिक प्रयासों में एक दूसरे को भौतिक और नैतिक समर्थन देंगे।"

1871 के लंदन सम्मेलन के छह साल बाद घेन्ट की इस थीसिस ने सिद्ध किया कि मार्क्स महज समय से कुछ आगे रहे थे। क्योंकि उसी दस्तावेज में पुष्टि की गई :

> "हम आंदोलन, प्रचार, जन शिक्षा और एकजुटता के शक्तिशाली साधन के बतौर राजनीतिक कार्यवाही की जरूरत महसूस करते हैं। समाज के वर्तमान संगठन का मुकाबला चारों ओर से एकबारगी और उपलब्ध सभी साधनों से करना होगा।....समाजवाद को भविष्य के संभावित सामाजिक संगठन के बारे में महज सैद्धांतिक अटकलबाजी नहीं होना चाहिए। इसे वास्तविक और जीवंत, ठोस आकांक्षाओं, तात्कालिक जरूरतों तथा सामाजिक पूंजी और सामाजिक सत्ता को नियंत्रित करने वालों के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग के दैनिक संघर्षों से जुड़ा हुआ होना चाहिए।"

"पूंजीपति वर्ग से राजनीतिक अधिकार छीन लेना, बिखरे हुए मज़दूरों को किसी एसोसिएशन में संगठित करना, प्रतिरोध सोसाइटियों या हड़ताल की कार्यवाही के जरिए काम के घंटों में कमी कराना–यह सब नए समाज के निर्माण में हाथ बंटाना तो है ही, भविष्य की सामाजिक व्यवस्था के सिलसिले में सच्ची खोज में संलग्न होना भी है।"

"अब तक असंगठित रहे मज़दूरों को एकताबद्ध होने दें और संगठन बनाने दें! जो लोग केवल आर्थिक धरातल पर संगठित हैं उन्हें राजनीतिक धरातल पर उतरने दें, वहां भी वही विरोधी और वही संघर्ष मिलेंगे तथा इनमें से एक धरातल पर हासिल जीत से दूसरे धरातल पर भी विजय की राह खुलेगी!"

"प्रत्येक देश में सभी पूंजीवादी पार्टियों से अलग विशाल पार्टी के रूप में वंचित वर्ग को संगठित होने दें और इस सामाजिक पार्टी को अन्य देशों की वैसी ही सामाजिक पार्टी के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने दें!"

"अपने सभी अधिकारों पर दावा ठोंकने के लिए, समस्त विशेषाधिकारों के उन्मूलन के लिए दुनिया के मज़दूरों एक हो!"

बाद के दशकों में मज़दूर आंदोलन ने समाजवादी कार्यक्रम अपनाया, समूचे यूरोप में और उसके बाद सारे संसार में फैला और राष्ट्रोपरि समन्वय के लिए नए ढांचे बनाए। नामों की निरंतरता के अतिरिक्त (1889 से 1916 तक दूसरा इंटरनेशनल और 1919 से 1943 तक तीसरा इंटरनेशनल) भी इनमें से प्रत्येक ढांचे ने लगातार प्रथम इंटरनेशनल के मूल्यों और सिद्धांतों को याद रखा। इस तरह इसका क्रांतिकारी संदेश असाधारण रूप से उपजाऊ साबित हुआ और समय बीतने के साथ इसने अपने जीवनकाल से भी महत्तर परिणामों को जन्म दिया।

इंटरनेशनल ने मज़दूरों को समझने में मदद की कि श्रम को एक देश में मुक्ति नहीं मिल सकती बल्कि यह वैश्विक लड़ाई है। इसने उनको यह भी अनुभूत कराया कि श्रमिक मुक्ति का यह लक्ष्य उन्हें किसी अन्य ताकत के सहारे प्राप्त करने की जगह संगठन की अपनी क्षमता के बल पर खुद ही हासिल करना है। और कि उन्हें पूंजीवादी उत्पादन पद्धति तथा मजूरी की दासता पर विजय प्राप्त करनी है क्योंकि मौजूदा व्यवस्था के भीतर सुधार के लिए लड़ना जरूरी तो है लेकिन इससे मालिकों के अल्पतंत्र पर उनकी निर्भरता नहीं समाप्त होगी–इस मोर्चे पर मार्क्स का योगदान बुनियादी महत्व का था।

उस समय की उम्मीद और हमारे समय के अविश्वास के बीच अलंघ्य खाई है। इंटरनेशनल के युग की व्यवस्था विरोधी चेतना और एकजुटता तथा नवउदारवादी प्रतिद्वंद्विता और निजीकरण की बनाई हुई दुनिया के वैचारिक समर्पण और व्यक्तिवाद के बीच जमीन आसमान का अंतर आ गया है। 1864 में लंदन में एकत्र मज़दूरों में राजनीतिक भावावेग, आजकल व्याप्त उदासीनता और अर्पण के पूरी तरह विपरीत था।

इसके बावजूद चूंकि श्रम की दुनिया उन्नीसवीं सदी जैसी शोषक परिस्थितियों की ओर लौट रही है इसलिए एक बार फिर इंटरनेशनल का प्रोजेक्ट असाधारण तौर पर प्रासंगिक हो गया है। आज की 'विश्व व्यवस्था' की बर्बरता, वर्तमान उत्पादन पद्धति जनित पारिस्थितिकीय विनाशलीला, चंद शोषक संपत्तिशालियों और विशाल दरिद्र बहुसंख्या के बीच बढ़ती दूरी, महिला उत्पीड़न, युद्ध की प्रचंड आंधी, नस्लवाद और अंधराष्ट्रवाद ने समसामयिक मज़दूर आंदोलन के समक्ष इंटरनेशनल की दो मुख्य खूबियों के आधार पर खुद को संगठित करने की आवश्यकता पैदा कर दी है और वे खूबियां हैं—ढांचे की विविधता और लक्ष्य की मूलगामिता। 150 साल पहले स्थापित संगठन के उद्देश्य आज और अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। बहरहाल वर्तमान की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए नए इंटरनेशनल को दो बातें करनी ही होंगी—इसे बहुलतावादी होना होगा और इसे पूंजीवाद विरोधी होना होगा।

परिशिष्ट

इंटरनेशनल की समय सारिणी और सदस्यता

इस परिशिष्ट के पहले भाग में इंटरनेशनल के सभी कांग्रेसों और सम्मेलनों की कालानुसार सूची है। इस सूची में 1864 की स्थापना से लेकर 1872 की हेग कांग्रेस में विभाजन तक एकात्मता है। उसके बाद 1873 से 'स्वायत्ततावादी' और 'केंद्रवादी' जुटानों को अलगा दिया गया है।

दूसरे भाग में विभिन्न देशों में इंटरनेशनल की सदस्यता के आंकड़े की तालिका है। अनेक कारणों से सही संख्या बताना असंभव है। (1) उस समय के मज़दूर आंदोलन के बहुत कम संगठन संख्या का सही खाता रखते थे। इसमें ब्रिटिश ट्रेड यूनियनें और जर्मन सोशलिस्ट पार्टियां सबसे आगे थीं। (2) इंटरनेशनल में मज़दूर अधिकतर व्यक्तिगत आधार पर शामिल नहीं होते थे बल्कि ट्रेड यूनियनों और अन्य सामूहिक निकायों की संबद्धता के जरिए वे इससे जुड़ते थे। (3) अनेक देशों में इंटरनेशनल कुछ कुछ समय के लिए गैर कानूनी रहा था जिसके चलते इसके बारे में पता लगाना खासकर मुश्किल हो जाता है। शायद इसीलिए इंटरनेशनल के बारे में लिखी किताबों में एक अमूल्य सामूहिक कृति को छोड़कर किसी ने भी इसकी सदस्यता की गणना करने की कोशिश नहीं की है। अगर हमने कुछ भूल चूक के खतरों के बावजूद ऐसी कोशिश को उपयोगी समझा तो उसकी बड़ी वजह अतीत के अधिकांश प्रकाशनों में बड़ा चढ़ाकर बताई गई काल्पनिक संख्या के आधार पर बनी यथार्थ की भ्रामक तस्वीर है।

समय सारिणी

सम्मेलन और कांग्रेसें (1864-1872)

लंदन सम्मेलन : 25-29 सितंबर 1865

पहली कांग्रेस : जेनेवा, 3-8 सितंबर 1866

दूसरी कांग्रेस : लूसान, 2-8 सितंबर 1867

तीसरी कांग्रेस : ब्रसेल्स, 6-13 सितंबर 1868

चौथी कांग्रेस : बासेल, 6-12 सितंबर 1869

लंदन प्रतिनिधि सम्मेलन : 17-23 सितंबर 1871

पांचवीं कांग्रेस : हेग, 2-7 सितंबर 1872

'स्वायत्ततावादी' इंटरनेशनल

छठवीं कांग्रेस : जेनेवा, 1-6 सितंबर 1873

सातवीं कांग्रेस : ब्रसेल्स, 7-13 सितंबर 1874

आठवीं कांग्रेस : बर्नी, 26-30 अक्टूबर 1876

नवीं कांग्रेस : वेरविएर्स, 6-8 सितंबर 1877

'केंद्रीयतावादी' इंटरनेशनल

छठवीं कांग्रेस : जेनेवा, 7-13 सितंबर 1873

फिलाडेलफिया प्रतिनिधि सम्मेलन : 15 जुलाई 1876

नीचे की तालिका में पहले कालम में स्थापना काल के क्रम में उन देशों का नाम है जहां इंटरनेशनल की मौजूदगी थी। इसमें आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, या भारत जैसे उन देशों का नाम नहीं है जहां इसके छिटपुट सम्पर्क मज़दूरों के छोटे समूहों में ही थे। इसमें रूस का भी नाम नहीं है क्योंकि इंटरनेशनल उस देश में कभी प्रवेश नहीं कर सका था (हालांकि कुछ निर्वासित लोगों ने स्विट्ज़रलैंड में एक केंद्र स्थापित किया था)। दूसरे कालम में उस साल का उल्लेख है जब संबंधित देश में संगठन चरम पर पहुंचा था। तीसरे कालम में अनुमानित सदस्य संख्या बताई गई है। यह आंकड़ा ऊपर बताई गई किताब और ढेर सारी अन्य पुस्तिकाओं के आधार पर तैयार किया गया है।

सदस्यता की तालिका

देश	चरम वर्ष	सदस्यता
ब्रिटेन	1867	50000
स्विट्ज़रलैंड	1870	6000

फ़्रांस	1871	30000 से अधिक
बेल्जियम	1871	30000 से अधिक
संयुक्त राज्य अमेरिका	1872	4000
जर्मनी	1870	11000 (सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी के सदस्यों सहित)
स्पेन	1873	लगभग 30000
इटली	1873	लगभग 25000
नीदरलैंड्स	1872	1000 से कम
डेनमार्क	1872	एक दो हजार
पुर्तगाल	1872	1000 से कम
आयरलैंड	1872	1000 से कम
आस्ट्रिया-हंगरी	1872	एक दो हजार

दस्तावेज

1
इंटरनेशनल की उद्घाटन-घोषणा

कार्ल मार्क्स

मज़दूरों,

यह निर्विवाद तथ्य है कि 1848 से लेकर 1864 तक मज़दूर जनसमुदाय की ग़रीबी कम नहीं हुई है हालांकि उद्योग के विकास तथा वाणिज्य की वृद्धि के मामले में यह अवधि इतिहास में बेमिसाल रही है। 1850 में ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग के नरम विचारों वाले और अच्छी-ख़ासी जानकारी रखनेवाले एक मुखपत्र ने भविष्यवाणी की थी की यदि इंगलैंड के आयात और निर्यात में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाये तो इस देश से दरिद्रता लुप्त हो जायेगी। परन्तु अफ़सोस! 7 अप्रैल 1964 को ब्रिटिश राजस्व मंत्री, विलियम ग्लैडस्टन ने अपने संसदीय श्रोताओं को इस बयान से पुलकित कर दिया कि इंगलैंड का कुल आयात-निर्यात व्यापार 1863 में बढ़कर "44,39,55,000 स्टर्लिंग तक पहुंच गया है! यह विस्मयकारी राशि 1843 की हाल की अवधि के व्यापार से लगभग तीन गुनी है!" यह सब होते हुए भी राजस्व मंत्री "दरिद्रता" के बारे में बहुत भावुकता से बोले। उन्होंने विस्मयबोधक स्वर में कहा–"ज़रा सोचें उनके बारे में जो ग़रीबी की सीमा-रेखा पर खड़े हैं," "मजूरी..." के बारे में "जो नहीं बढ़ी है," "उस मानव-जीवन के बारे में... जो दस में से नौ के मामले में अस्तित्व के लिए संघर्ष मात्र है!" उन्होंने आयरलैंड के लोगों की चर्चा नहीं की जिनका स्थान उत्तर में धीरे-धीरे मशीनें तथा दक्षिण में भेड़ों के रेवड़ लेते जा रहे हैं; यह सच है कि उस बदनसीब देश में भेड़ों तक की तादाद में कमी हो रही है, हालांकि उस रफ़्तार से नहीं जिस रफ़्तार से इन्सानों की तादाद में। उन्होंने वह भेद की बात नहीं दुहरायी जिसे अभिजातों के सर्वोच्च प्रतिनिधियों ने भय का एकाएक दौरा पड़ जाने पर प्रकट कर दिया था। जब "गला

घोंटनेवालों" के आतंक ने बढ़कर एक निश्चित आकार ग्रहण कर लिया तो हाउस आफ़ लार्ड्स ने निर्वासन तथा कठोर-श्रम कारावास की जांच करने तथा एक रिपोर्ट प्रकाशित करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। सचाई 1863 की मोटी नीली पुस्तक के पन्नों में सामने आ गयी और सरकारी तथ्यों तथा आंकड़ों से यह सिद्ध हो गया कि इंगलैंड तथा स्काटलैंड के सबसे ख़राब अपराधी—कड़ी क़ैद की सज़ा प्राप्त लोग भी—इंगलैंड तथा स्काटलैंड में खेत-मज़दूरों से कहीं कम परिश्रम करते हैं तथा उनसे कहीं बेहतर हालत में हैं। परन्तु यही सब कुछ नहीं था। जब अमरीका में गृहयुद्ध के फलस्वरूप लंकाशायर तथा चेशायर के मज़दूरों को बेरोज़गार बनाकर सड़कों पर धकेल दिया गया तो उसी हाउस आफ़ लार्ड्स ने एक डाक्टर को औद्योगिक इलाकों में भेजा, उसे यह पता लगाने का काम सौंपा गया कि सबसे सस्ते तथा सादे रूप में दिये जानेवाले कार्बन और नाइट्रोजन की कितनी औसत मात्रा "भूखजनित रोगों को रोकने" के लिए पर्याप्त होगी। मेडिकल अधिकारी डा. स्मिथ ने तय किया कि 28000 ग्रेन कार्बन तथा 1330 ग्रेन नाइट्रोजन से सप्ताह में वह न्यूनतम मात्रा बनती है जो औसत बालिग आदमी के जीवन को ... भूख-जनित रोगों के स्तर से ज़रा बाहर रखेगी; उसने यह भी पता लगाया कि यह मात्रा लगभग पूरी तरह अत्यल्प आहार के बराबर है, कपड़ा मिल-मज़दूरों को घोर अभाव के कारण जिससे वस्तुतः सन्तुष्ट होना पड़ता है। हमें पाठक को यह याद दिलाने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि पानी तथा कतिपय अकार्बनिक पदार्थों के अलावा कार्बन तथा नाइट्रोजन मानव-भोजन की सामग्री हैं। परन्तु मानव-शरीर के आहार के लिए उन सामान्य रासायनिक अवयवों को साग-सब्ज़ी या पशु-जनित पदार्थों के रूप में मुहैया किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए आलू में मुख्यतया कार्बन होता है जबकि गेहूं की डबल रोटी मे कार्बनयुक्त तथा नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ उपयुक्त अनुपात में हुआ करते हैं। पर अब ज़रा ध्यान दें! उन्हीं मेडिकल अफ़सर को फिर मज़दूर वर्ग के सबसे दरिद्र भाग के आहार की जांच करने का काम सौंपा गया। उनकी खोजों के परिणाम चालू वर्ष में संसद के आदेश पर प्रकाशित 'सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में छठी रिपोर्ट' में सामने आये हैं। डाक्टर ने क्या खोजा? कि रेशमी वस्त्रों के बुनकर, दर्ज़िनें, दस्ताने तथा मोज़े बुननेवाले, आदि लोग औसतन साल दर साल सूती कपड़ा मिल-मज़दूरों को बेरोजगारी के समय दिया जानेवाला जितना राशन तक नहीं पाते, वे उतना कार्बन तथा नाइट्रोजन भी नहीं पाते जो "भूखजनित रोगों को रोकने के लिए पर्याप्त" होता है।

"यही नहीं," हम रिपोर्ट को उद्धृत कर रहे हैं, "जहां तक कृषक आबादी के उन परिवारों का सम्बन्ध है, जिनके बारे में जांच की गयी है, यह पाया गया कि इन परिवारों के पांचवें भाग से अधिक को कार्बनयुक्त भोजन अनुमानित पर्याप्त मात्रा में कम मिलता है, कि एक-तिहाई से अधिक को नाइट्रोजनयुक्त भोजन अनुमानित पर्याप्त मात्रा से भी कम मिलता है, कि तीन काउंटियों (बर्कशायर, आक्सफ़ोर्डशायर तथा सोमरसेटशायर) में अपर्याप्त नाइट्रोजनयुक्त भोजन साधारण बात है।" सरकारी रिपोर्ट में आगे चलकर कहा गया है : "यह स्मरण रहना चाहिए कि भोजन की तंगी बहुत अनिच्छापूर्वक स्वीकार की जाती है और नियमतः बहुत ख़राब आहार की बारी दूसरी तमाम तंगियों के बाद ही आती है... यहां तक कि स्वच्छता भी महंगी और कठिन सिद्ध होती है, और इसके बावजूद यदि आत्मसम्मान की दृष्टि से स्वच्छता रखने के प्रयत्न किये जाते हैं तो इस प्रकार का प्रत्येक प्रयत्न भूख की नयी पीड़ाओं का द्योतक होता है।" "ये विचार उस समय और पीड़ादायी बनते हैं जब यह बात स्मरण की जाती है कि जिस ग़रीबी की चर्चा हो रही है, वह निठल्लेपन की औचित्यपूर्ण सज़ा नहीं है; वह तो सारे मामलों में मेहनतकश आबादी की ग़रीबी है। वस्तुतः वह काम, जिसके लिए मज़दूर यह सीधा-सादा आहार पाते हैं, अधिकतर बहुत लम्बा खिंचता है।"

रिपोर्ट यह विचित्र, कहना चाहिए, अप्रत्याशित तथ्य प्रकाश में लाती है कि "यूनाइटेड किंगडम के सारे भागों"–इंगलैंड, वेल्स, स्काटलैंड तथा आयरलैंड–में से इंगलैंड की, सबसे समृद्ध भाग की कृषक आबादी को सबसे कम आहार मिलता है; परन्तु बर्कशायर, आक्सफ़ोर्डशायर तथा सोमरसेटशायर तक के ख़ेत-मज़दूर पूर्वी लन्दन के उद्योगों में काम करनेवाले हुनरमन्द मज़दूरों से बेहतर हालत में हैं।

ऐसे हैं संसद के आदेश द्वारा 1864 में, मुक्त व्यापार के स्वर्ण-युग में प्रकाशित सरकारी वक्तव्य जब राजस्व मंत्री हाउस आफ़ कामन्स में कह रहे थे–

> "ब्रिटिश मज़दूर की औसत हालत इतनी अधिक सुधरी है कि वह असाधारण है तथा किसी भी देश या किसी भी युग के इतिहास में बेमिसाल है।"

इस सरकारी लफ़्फ़ाज़ी का सरकारी सार्वजनिक स्वास्थ्य रिपोर्ट की शुष्क टिप्पणी तीक्ष्णतापूर्वक खण्डन करती है–

> "किसी भी देश के सार्वजनिक स्वास्थ्य का अर्थ है उसके जनसाधारण का स्वास्थ्य, और जनसाधारण मुश्किल से स्वस्थ होंगे अगर वे निचले स्तरों तक सामान्य रूप से समृद्ध नहीं होंगे।"

अपनी आंखों के सामने नृत्य करते "राष्ट्र की प्रगति" के आंकड़ों से चकाचौंध राजस्व मंत्री असीम हर्षोल्लास के साथ कह उठते हैं–

> "1842 से 1852 तक देश की कर योग्य आय 6 प्रतिशत बढ़ी है; 1853 को आधार मानते हुए वह 1853 से 1861 तक 20 प्रतिशत बढ़ी है! यह तथ्य इतना आश्चर्यजनक है कि वह प्रायः अविश्वसनीय प्रतीत होता है!..." श्री ग्लैडस्टन ने आगे कहा : "समृद्धि तथा शक्ति की यह मदोन्मत्तकारी वृद्धि सर्वथा सम्पत्तिधारी वर्गों तक सीमित है!"

यदि आप यह जानना चाहते हैं कि जर्जर स्वास्थ्य, निराशा तथा मानसिक अधःपतन की किन परिस्थितियों के अन्तर्गत मज़दूर वर्ग "सर्वथा सम्पत्तिधारी वर्गों तक सीमित" यह "समृद्धि तथा शक्ति की मदोन्मत्तकारी वृद्धि" पैदा कर रहे थे या कर रहे हैं तो ज़रा दर्ज़ीघरों, छापाख़ानों और ड्रेसमेकरों के वर्कशापों के विषय में पिछली 'सार्वजनिक स्वास्थ्य रिपोर्ट' में प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट पर नज़र डालें! इस रिपोर्ट की तुलना 1863 की 'बाल रोज़गार आयोग की रिपोर्ट' से करें जिसमें, उदाहरण के लिए, कहा गया है कि

> "कुम्हार, नर और नारी दोनों शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टि से आबादी की अत्यधिक अधःपतित श्रेणी में आते हैं;" कि "अस्वस्थ बच्चा बड़ा होने पर अस्वस्थ मां या बाप बनता है;" कि "नस्ल क्रमिक रूप से बिगड़ती चली जायेगी;" कि "यदि पड़ोस के प्रदेशों से निरन्तर भर्ती न होती रहती तथा अधिक स्वस्थ लोगों के साथ विवाह न होते रहते तो स्टेफ़ोर्डशायर की आबादी का अधःपतन और भी अधिक होता।"

ज़रा 'नानबाई मज़दूर-कारीगरों की शिकायतें' नामक श्री ट्रेमेनहीर की नीली पुस्तक पर नज़र डालें! फ़ैक्टरियों के इन्स्पेक्टरों द्वारा प्रस्तुत तथा रजिस्ट्रार-जनरल द्वारा प्रमाणित किये गये इस विरोधाभासपूर्ण वक्तव्य से किसे कंपकंपी नहीं आयी होगी कि लंकाशायर के मज़दूरों को जब राहत के रूप में राशन दिया जाने लगा तो उनका स्वास्थ्य वस्तुतः सुधरता गया क्योंकि वे सूत के अभाव के कारण सूती कपड़ा मिलों से अस्थायी रूप से अलग हो गये थे; कि बाल मृत्यु-दर घट रही थी क्योंकि माताओं को गाडफ्रे की अफ़ीम मिश्रित दवा के बजाय अब अपने बच्चों को अपना दूध पिलाने की सुविधा तो दे दी गयी थी।

अब सिक्के का दूसरा पहलू देखें! 20 जुलाई 1864 को हाउस आफ़ कामन्स के समक्ष प्रस्तुत आय तथा सम्पत्ति कर सम्बन्धी ब्योरा हमें बताता है कि जिन

लोगों की वार्षिक आमदनी कर वसूलनेवालों ने 50000 स्टर्लिंग या इससे अधिक आंकी है, उनकी संख्या में 5 अप्रैल 1862 और 5 अप्रैल 1863 के बीच 13 की वृद्धि हुई है, वह एक वर्ष के अन्दर-अन्दर 67 से 80 बढ़कर हो गई है। इसी ब्योरे से यह भी पता चलता है कि लगभग तीन हज़ार व्यक्ति ढाई करोड़ स्टर्लिंग की वार्षिक आय को, या कहना चाहिए उस कुल धनराशि से अधिक को आपस में बांट लेते हैं जो इंगलैंड तथा वेल्स के खेत-मज़दूरों के पूरे समूह के बीच प्रति वर्ष बांटी जाती है। 1861 की जनगणना पर नज़र डालें तो आपको पता चल जायेगा कि इंगलैंड तथा वेल्स में भूस्वामी मर्दों की संख्या 1851 में 16934 थी, 1867 में घटकर 15060 रह गयी है। इस तरह भूमि का संकेन्द्रण दस वर्षों में 11 प्रतिशत बढ़ा है। यदि देश में ज़मीन चन्द लोगों के हाथों में इसी रफ़्तार से संकेन्द्रित होती रही तो भूमि का प्रश्न उसी अनोखे ढंग से सरलीकृत हो जायेगा जिस ढंग से वह रोमन साम्राज्य में हुआ था, वहां नीरो यह सुनकर विद्वेषपूर्ण ढंग से मुस्कराया था कि आधे अफ़्रीकी प्रदेश पर 6 लोगों का स्वामित्व है।

हमने इस "तथ्यों की, जो इतने आश्चर्यजनक हैं कि प्रायः अविश्वसनीय प्रतीत होते हैं", इतनी देर तक चर्चा इसलिये की कि इंगलैंड वाणिज्य तथा उद्योग में यूरोप के शीर्ष स्थान पर है। स्मरण रहे, लूई फ़िलिप के उत्प्रवासी पुत्र ने अंग्रेज खेत-मज़दूर को इंगलिश चैनल के पार के अपने कम भाग्यशाली साथियों से बेहतर दशा के लिए सार्वजनिक रूप से बधाई दी थी। निस्सन्देह इंगलैंड के ये तथ्य स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तथा कुछ संकुचित आकार में महाद्वीप के तमाम औद्योगिक तथा प्रगतिशील देशों में प्रकट होते हैं। उन सब में 1848 से लेकर उद्योग का अभूतपूर्व विकास और आयात तथा निर्यात का अकल्पनीय विस्तार हुआ है। उन सब में "सर्वथा सम्पत्तिधारी वर्गों तक सीमित समृद्धि तथा शक्ति की वृद्धि" सचमुच "मदोन्मत्तकारी" थी। इंगलैंड की तरह उन सब में मज़दूर वर्ग की एक अल्पसंख्या को वास्तविक मजूरी कुछ बढ़ी हुई मात्रा में मिली जबकि अधिकांश मज़दूरों की मजूरी में नक़द वृद्धि का सुख-सुविधाओं की सुलभता के लिए उसी तरह कोई महत्व नहीं था जिस तरह, उदाहरण के लिए, लन्दन के दरिद्रगृहों तथा अनाथालयों में रहनेवालों के लिए इस तथ्य का कोई महत्व नहीं था कि खाद्य-पदार्थों पर जो ख़र्च 1861 में 9 पौंड 15 शिलिंग 8 पैंस था, वह 1852 में 7 पौंड 7 शिलिंग 4 पैंस रह गया। सर्वत्र मज़दूर वर्ग का बहुत बड़ा जन-समूह कम से कम उसी रफ़्तार से नीचे धंसता चला जा रहा था, जिस रफ़्तार से उनके

ऊपर के वर्गों का सामाजिक पलड़ा भारी होता जा रहा था। यूरोप के तमाम देशों में प्रत्येक पूर्वाग्रहरहित मस्तिष्क के सामने अब यह सत्य प्रत्यक्ष हो चुका है कि न मशीनों में सुधार, न उत्पादन में विज्ञान का अमल, न संचार के साधनों में उन्नति, न नये उपनिवेश, न उत्प्रवास, न नयी मंडियां, न मुक्त व्यापार और न ही ये सब वस्तुएं मिलकर मेहनतकश जनसाधारण की ग़रीबी मिटा सकती है; कि वर्तमान मिथ्या आधार पर श्रम की उत्पादन-शक्ति का कोई भी नया विकास सामाजिक विरोधाभासों को निश्चित रूप से गहन बनायेगा और सामाजिक वैरभावों को तेज करेगा; केवल वही लोग, जिनका हित दूसरों को काल्पनिक आनन्द की दुनिया में रोके रहना है, इस सत्य से इन्कार करते हैं। आर्थिक प्रगति के इस "मदोन्मत्तकारी" युग में ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी में भूख से मौंतों ने प्रायः सामाजिक नियम का चरित्र ग्रहण कर लिया है। यह युग विश्व के इतिहास में सामाजिक महामारी की, जिसका नाम वाणिज्यिक तथा औद्योगिक संकट है, अधिकाधिक द्रुत पुनरावृत्ति, उसकी विस्तृत होती जा रही परिधि तथा उसके अधिक घातक प्रभाव से अंकित है।

1848 की क्रान्ति की विफलता के उपरान्त महाद्वीप में मज़दूर वर्ग के सारे पार्टी संगठनों तथा पार्टी अख़बारों को कठोरतापूर्वक कुचल दिया गया; मज़दूर वर्ग के सबसे अग्रणी बेटे निराश हालत में भाग कर अटलांटिक पार के जनतंत्र पहुंचे; और मुक्ति के अल्पकालिक स्वप्न औद्योगिक सरगर्मी, नैतिक क्षय तथा राजनीतिक प्रतिक्रियावाद के युग के आरम्भ होने पर विलीन हो गये। महाद्वीप के मज़दूर वर्ग की पराजय ने, जिसका अंशतः कारण आंग्ल सरकार की कूटनीति थी, जो आज की तरह पहले भी सेंट-पीटर्सबर्ग के मंत्रिमंडल के साथ बन्धुत्वपूर्ण एकजुटता क़ायम रखते हुए काम कर रही थी, अपने संक्रामक प्रभावों को जल्द इंगलिश चैनल की दूसरी तरफ़ भी फैला दिया। महाद्वीपीय वर्ग-बन्धुओं की पराजय ने जहां आंग्ल मज़दूरों का हौसला पस्त कर दिया तथा अपने लक्ष्य में उनका विश्वास भंग कर दिया, वहां उसने जमींदारों तथा महाजनों के कुछ हद तक डिग चुके विश्वास को फिर से जगा दिया। वे पहले विज्ञापित की जा चुकी रियायतों से गुस्ताख़ी के साथ मुकर गये। नये स्वर्ण-क्षेत्रों की खोज़ ने बहुत बड़े पैमाने पर निष्क्रमण को जन्म दिया जो ब्रिटिश सर्वहाराओं की पांतों में पूरी न की जा सकनेवाली रिक्तता छोड़ गया। उसके अन्य भूतपूर्व सक्रिय सदस्य अधिक काम तथा मजूरी की अस्थायी रिश्वत के चक्कर में फंस गये तथा "राजनीतिक हड़तालतोड़क" बन

गये। चार्टिस्ट आन्दोलन को बनाये रखने या उसका पुनःसंगठन करने की सारी चेष्टाएं बुरी तरह विफल हो गयीं। जनसाधारण की उदासीनता के कारण मज़दूर वर्ग के अख़बार एक-एक कर बन्द होते गये; और सच तो यह है कि आंग्ल मज़दूर वर्ग राजनीतिक नगण्यता की स्थिति को इस तरह तरह पहले कभी शिरोधार्य करता नहीं दिखायी दिया था। ब्रिटिश तथा महाद्वीपीय मज़दूर वर्ग के बीच यदि पहले कार्रवाई की एकता नहीं रही तो अब उनके बीच बहरसूरत पराजय की एकजुटता तो थी ही।

इसके बावजूद 1848 की क्रान्तियों के बाद गुज़री अवधि सकारात्मक लक्षणों से वंचित नहीं है। यहां हम केवल दो तथ्यों की ओर संकेत करेंगे।

अत्यन्त प्रशंसनीय धैर्य के साथ लड़ी गयी तीस वर्षीय लड़ाई के बाद अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग ने ज़मीनदारों तथा महाज़नों के बीच अस्थायी फूट का लाभ उठाते हुए 10 घंटे के कार्य-दिवस का विधेयक मंजूर कराने में सफलता प्राप्त की। कारख़ाना -मज़दूरों को इसके अपरिमित शारीरिक, नैतिक तथा बौद्धिक लाभों को, जिनका अर्द्धवर्षीय वृतान्त कारख़ानों के इन्स्पेक्टरों की रिपोर्टों में दर्ज है, अब सब स्वीकार करते हैं। अधिकांश महाद्वीपीय सरकारों को आंग्ल कारख़ाना-क़ानून न्यूनाधिक संशोधित रूप में स्वीकार करना पड़ा। और स्वयं आंग्ल संसद हर साल इसके कार्यकलाप का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए विवश होती रही। मेहनतकशों के इस पग का उनके लिए व्यावहारिक अर्थ तो था ही, इसके अलावा उसकी अद्भुत सफलता का कुछ और भी कारण था। पूंजीपति वर्ग ने प्रोफ़ेसर सीनियर, डा. यूरे और दूसरे बदनाम वैज्ञानिकों तथा उसी ढंग के दूसरे पंडितों के ज़रिए यह भविष्यवाणी की तथा वह निरन्तर यह सिद्ध करता रहा कि काम के घंटों को किसी प्रकार के क़ानून द्वारा सीमित करने की कार्रवाई ब्रिटिश उद्योग के लिए मौत की घंटी होगी जो रक्त चूषक प्रेत की तरह ख़ून चूसकर, बच्चों का ख़ून चूसकर ही जीवित रह सकता है। पुराने ज़माने में बाल-हत्या मोलोख धर्म का एक गुप्त अनुष्ठान हुआ करता था। कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण उत्सवों के समय, सम्भवतः वर्ष में एक बार वह अनुष्ठान किया जाता था, इसके अलावा मोलोख की ग़रीबों के बच्चों के प्रति कोई विशिष्ट आसक्ति नहीं थी। काम के घंटे क़ानून द्वारा सीमित किये जाने के बारे में यह संघर्ष इसलिए और भी उग्रतापूर्वक चला कि लालची मुनाफ़ाख़ोरों के भयभीत होने से निरपेक्ष रूप में यहां मामला पूर्ति तथा मांग के नियम के अंध शासन—जो पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र का आधार

है–तथा सामाजिक दूरदृष्टि द्वारा नियंत्रित सामाजिक उत्पादन–जो मज़दूर वर्ग का राजनीतिक अर्थशास्त्र है–के बीच चलनेवाले महान विवाद का था। इस कारण दस घंटे के कार्य-दिवस का विधेयक बहुत बड़ी व्यावहारिक सफलता मात्र नहीं था; वह तो एक सिद्धान्त की विजय था; यह पहला मौक़ा था जब पूंजीपति वर्ग का राजनीतिक अर्थशास्त्र मज़दूर वर्ग के अर्थशास्त्र के आगे दिनदहाड़े पीछे हट गया।

परन्तु सम्पत्ति के राजनीतिक अर्थशास्त्र पर श्रम के राजनीतिक अर्थशास्त्र को अभी और भी बड़ी विजय प्राप्त करनी थी। हम सहकारिता आन्दोलन की, विशेष रूप से चन्द साहसी "हाथों" द्वारा बिना मदद के खड़े किये गये सहकारी कारख़ानों की बात कर रहे हैं। इन बड़े सामाजिक प्रयोगों का मूल्य घटाकर नहीं आंका जा सकता। उन्होंने कथनी से नहीं वरन् करनी से यह दिखा दिया है कि व्यापक तथा आधुनिक विज्ञान की अपेक्षाओं से मेल खानेवाला उत्पादन-कार्य मज़दूर वर्ग को नौकर रखनेवाले स्वामियों के वर्ग के अस्तित्व के बिना चलाया जा सकता है; उन्होंने यह दिखा दिया कि सफल उत्पादन के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि स्वयं श्रम करनेवाले पर प्रभुत्व क़ायम करने तथा उससे ज़बर्दस्ती वसूली करने के साधन के रूप में श्रम के साधनों पर एकाधिकार क़ायम किया जाये; उन्होंने यह दिखा दिया कि भूदास-श्रम की भांति, दास-श्रम की भांति, उजरती श्रम भी एक संक्रमणात्मक और निम्न रूप है जिसका स्वेच्छा, तत्परता तथा उत्साह के साथ किये जानेवाले सामूहिक श्रम के सामने विलोप अवश्यम्भावी है। इंगलैंड में सहकारी प्रणाली के बीज राबर्ट ओवेन न बोये थे; मेहनतकश लोगों के प्रयोग, जो महाद्वीप में अमल में लाये गये, वस्तुतः उन सिद्धान्तों के प्रथम व्यावहारिक निष्कर्ष थे जिन्हें 1848 में आविष्कृत नहीं किया गया था, वरन् ज़ोरों से उद्घोषित किया गया था।

साथ ही 1848 से लेकर 1864 तक की अवधि के अनुभव ने असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया है कि सहकारी श्रम सिद्धान्त में कितना ही उत्तम क्यों न हो, व्यवहार में कितना ही उपयोगी क्यों न हो, जब तक उसे अलग-अलग मेहनतकशों के अनियत प्रयत्नों के संकीर्ण दायरे से बाहर नहीं लाया जायेगा वह इजारेदारी की द्रुत वृद्धि को रोकने, जनसाधारण को मुक्त करने, यहां तक कि उनकी ग़रीबी के भार में कोई प्रत्यक्ष कमी लाने में कभी समर्थ नहीं हो सकेगा। सम्भवतः ठीक यही कारण है कि सदाशायी अभिजात लोग, पूंजीवादी वाचाल-परोपकारी, यहां तक कि प्रखर अर्थशास्त्री भी–सब के सब घृणास्पद ढंग से तुरन्त ठीक उसी सहकारी श्रम

के पक्ष में हो गये हैं जिसे उन्होंने स्वप्नद्रष्टा का कल्पनाविलास बताकर, समाजवादी ईश्वरनिन्दा बताकर आरम्भ में ही नष्ट करने का विफल यत्न किया था। श्रमिक जनसाधारण की मुक्ति के लिए सहकारी श्रम को राष्ट्रीय पैमाने और फलस्वरूप राष्ट्रीय साधनों के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए। परन्तु भूमि के प्रभु तथा पूंजी के प्रभु अपनी आर्थिक इजारेदारियों की रक्षा करने तथा उन्हें बरकरार रखने के लिए सदैव अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों का उपयोग करते रहेंगे। इसलिए श्रम की मुक्ति को बढ़ावा देना तो रहा दूर, वे उसकी राह में हर प्रकार का बाधा पैदा करते रहेंगे। ज़रा स्मरण करें कि लार्ड पामर्स्टन ने पार्लमेंट के पिछले अधिवेशन में आयरिश पट्टेदार अधिकार क़ानून के समर्थकों को किस तिरस्कारपूर्ण ढंग से ख़ामोश कर दिया था। वह चिल्ला उठे—हाउस आफ़ कामन्स भूमिधारी मालिकों का सदन है।

इसलिए राजनीतिक सत्ता हालिस करना मज़दूर वर्गों का महान कर्तव्य बन गया है। वे यह बात समझ गये प्रतीत होते हैं क्योंकि इंगलैंड, जर्मनी, इटली तथा फ्रांस में मज़दूर पार्टी का एक साथ पुनरुज्जीवन हुआ है तथा उसके राजनीतिक पुनःसंगठन के लिए एक साथ प्रयत्न किये जा रहे हैं।

मज़दूरों के पास सफलता का एक तत्व है, वह है संख्या। परन्तु संख्या तभी निर्णायक होती है जब जनसाधारण संगठन में ऐक्यबद्ध हों तथा ज्ञान उनका नेतृत्व करता हो। अतीत का अनुभव बताता है कि भाईचारे के उस सम्बन्ध-सूत्र की उपेक्षा ने, जो विभिन्न देशों के मेहनतकशों के बीच होना चाहिए और जिसे उनके मुक्ति के संघर्ष में एक-दूसरे के साथ दृढ़तापूर्वक खड़े रहने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए, उनके असंलग्न प्रयत्नों को समान विफलता के मुंह में पहुंचाया। इस विचार ने 28 सितम्बर 1864 को सेंट मार्टिन हाल में जमा होनेवाले विभिन्न देशों के मेहनतकश लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया।

एक और धारणा ने इस सभा में भाग लेनेवालों को अनुप्राणित किया।

यदि मज़दूर वर्ग की मुक्ति मज़दूरों के बन्धुत्वपूर्ण सहयोग की अपेक्षा करती है तो वे मुजरिमाना मन्सूबों का अनुसरण करनेवाली विदेश नीति के अन्तर्गत जो राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों के साथ खिलवाड़ करती है, जो दस्युतापूर्ण युद्धों में जनता का रक्त तथा उसकी दौलत बरबाद करती है, कैसे अपने महान ध्येय की पूर्ति कर सकते हैं? सत्तारूढ़ वर्गों की बुद्धिमत्ता नहीं, वरन् उनकी मुजरिमाना मूर्खता का

इंगलैंड के मज़दूर वर्ग द्वारा किये गये वीरतापूर्ण प्रतिरोध ने पश्चिमी यूरोप को अटलांटिक के पार दासता बनाये रखने तथा प्रसार करने के लिए बदनाम जेहाद में सीधे कूदने से बचाया। यूरोप के ऊपरी वर्ग जिस बनावटी सहानुभूति अथवा मूर्खतापूर्ण उदासीनता के साथ रूस द्वारा काकेशियाई पर्वतीय दुर्गों पर क़ब्जा और वीर पोलैंड की हत्या देखते रहे, उन्होंने तथा इन कार्रवाइयों के निर्लज्जतापूर्ण अनुमोदन ने, उस बर्बर शक्ति के, जिसका सिर सेंट पीटर्सबर्ग में है तथा जिसके हाथ यूरोप के सारे मंत्रिमंडलों के अन्दर हैं, असीम तथा अप्रतिरोधित अतिक्रमणों ने मज़दूर वर्ग को सिखाया है कि अन्तराष्ट्रीय राजनीति के रहस्यों में पारंगत बनना, अपनी-अपनी सरकारों की कूटनीतिक कार्रवाइयों पर नज़र रखना, ज़रूरत पड़ने पर अपनी भरपूर ताक़त से उन्हें विफल बनाना; उन्हें रोकने में असमर्थ होने की हालत में उनकी एक साथ भर्त्सना करने के लिए एकजुट होना और नैतिकता तथा न्याय के सीधे-सादे नियमों की, जिन्हें निजी तौर पर लोगों के सम्बन्ध निदेशित करने चाहिए, राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों के सर्वोच्च नियमों के रूप में रक्षा करना उनका कर्त्तव्य है।

इस प्रकार की विदेश नीति के लिए संघर्ष मज़दूर वर्ग की मुक्ति की आम लड़ाई का अंग है।

दुनिया के मज़दूरों, एक हो!

2
इंटरनेशनल की आम नियमावली

कार्ल मार्क्स

यह ध्यान में रखते हुए

कि मज़दूर वर्गों की मुक्ति स्वयं मज़दूर वर्गों द्वारा हासिल की जानी चाहिए; कि मज़दूर वर्गों की मुक्ति का अर्थ वर्ग-विशेषाधिकारों तथा इजारेदारियों के लिए नहीं, वरन् समान अधिकारों तथा कर्तव्यों और समस्त वर्ग-शासन के उन्मूलन के लिए संघर्ष है;

कि मेहनतकश इन्सान की श्रम के साधनों के, अर्थात् जीवन के स्रोतों के इजारेदार की आर्थिक अधीनता दासता और उसके समस्त रूपों, सारी सामाजिक दरिद्रता, मानसिक अधःपतन तथा राजनीतिक पराधीनता का आधार है;

कि इसलिए मज़दूर वर्गों की आर्थिक मुक्ति एक महान लक्ष्य है, प्रत्येक राजनीतिक आन्दोलन को एक साधन के रूप में उसके अधीन होना चाहिए;

कि उस महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए किये गये सारे प्रयत्न हर देश में श्रम के विविध भागों के बीच एकजुटता के अभाव के कारण, विभिन्न देशों के मज़दूर वर्गों के बीच ऐक्यबद्धता के बन्धुत्वपूर्ण सूत्र के अभाव के कारण अब तक विफल रहे हैं;

कि श्रम की मुक्ति न तो स्थानीय और न राष्ट्रीय समस्या है, बल्कि एक सामाजिक समस्या है जिसकी परिधि में वे सारे देश आ जाते हैं जहां आधुनिक समाज का अस्तित्व है, और जिसका समाधान सबसे उन्नत देशों के व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक सहयोग पर निर्भर करता है;

कि यूरोप के सबसे अधिक विकसित औद्योगिक देशों में मज़दूर वर्गों का वर्तमान नवीन पुनरुत्थान जहां नयी आशा को जन्म देता है, वहां वह पुरानी ग़लतियों की पुनरावृत्ति किये जाने के बारे में गम्भीर चेतावनी भी देता है तथा अभी तक असम्बद्ध आन्दोलनों को तत्काल सूत्रबद्ध करने का आह्वान करता है;

इन कारणों से–

इंटरनेशनल की स्थापना की गयी है।

वह घोषित करता है :

कि उससे संलग्न होनेवाली समस्त सोसायटियां तथा व्यक्ति सत्य, न्याय तथा नैतिकता को एक-दूसरे के प्रति तथा शरीर के रंग, धार्मिक विश्वास या जातीयता का ख़्याल किये बिना समस्त लोगों के प्रति अपने व्यवहार के आधार के रूप में शिरोधार्य करेंगे;

कि वह **कर्त्तव्यों से रहित किसी भी अधिकार को तथा अधिकारों से रहित किसी भी कर्त्तव्य को स्वीकार नहीं** करता;

और इस भावना में निम्न नियमावली तैयार की गयी है।

1. यह संघ विभिन्न देशों में विद्यमान तथा एक ही लक्ष्य के लिए, अर्थात् मज़दूर वर्गों की रक्षा, उन्नति तथा पूर्ण मुक्ति के लिए काम करनेवाली मज़दूरों की सोसायटियों के बीच संपर्क तथा सहयोग का एक केन्द्र बनाने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है।

2. सोसायटी का नाम "इंटरनेशनल वर्किंग मेन'स एसोसिएशन" होगा।

3. प्रति वर्ष आम मज़दूर कांग्रेस हुआ करेगी जिसमें संघ की शाखाओं के प्रतिनिधि शामिल होंगे। कांग्रेस को मज़दूर वर्ग की समान आकांक्षाएं उद्घोषित करनी होंगी, इंटरनेशनल के कार्य की सफलता के लिए आवश्यक पग उठाने होंगे तथा संघ की जनरल कौंसिल की स्थापना करनी होगी।

4. प्रत्येक कांग्रेस आगामी कांग्रेस के आयोजन के लिए स्थान तथा समय निश्चित करेगी। प्रतिनिधि किसी विशेष निमंत्रण के बिना नियत समय तथा स्थान पर जमा होंगे। जनरल कौंसिल आवश्यकता पड़ने पर स्थान बदल सकती है परन्तु उसे सभा का समय स्थगित करने का कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेस प्रति वर्ष जनरल कौंसिल का स्थान तय करेगी तथा उसके सदस्य निर्वाचित करेगी। इस

प्रकार निर्वाचित जनरल कौंसिल को अपने सदस्यों की संख्या बढ़ाने का अधिकार होगा।

आम कांग्रेस अपने वार्षिक अधिवेशनों में जनरल कौंसिल के सालाना कार्यों की सार्वजनिक रिपोर्ट पर विचार किया करेगी। जनरल कौंसिल संकट की स्थिति में नियमित वार्षिक कार्यकाल से पहले भी आम कांग्रेस बुला सकती है।

5. जनरल कौंसिल इंटरनेशनल में विभिन्न देशों के प्रतिनिधित्व प्राप्त मज़दूरों को लेकर बनेगी। वह कामकाज के संचालन के लिए अपने सदस्यों में से अधिकारी चुना करेगी, जैसे कोषाध्यक्ष, महासचिव, विभिन्न देशों के लिए सहयोगी सचिव, आदि।

6. जनरल कौंसिल संघ के विभिन्न राष्ट्रीय तथा स्थानीय संगठनों के मध्य एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय गठित करेगी ताकि एक देश के मज़दूरों को हर अन्य देश में अपने वर्ग के आन्दोलनों से निरन्तर अवगत रखा जा सके; ताकि यूरोप के विभिन्न देशों की सामाजिक दशा के बारे में एक साथ तथा समान निर्देशन में जांच की जा सके; ताकि एक सोसायटी में उठनेवाले समान दिलचस्पी के सवालों पर सबमें विचार हो सकें; ताकि जब कभी तत्काल व्यावहारिक कदम—उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के बारे में—उठाने ज़रूरी हों, संघ की सोसायटियां एक साथ कार्रवाई कर सकें तथा उसमें एकरूपता हो। जब भी उपयुक्त हो, जनरल कौंसिल विभिन्न राष्ट्रीय अथवा स्थानीय सोसायटियों के समक्ष प्रस्ताव रखने के लिए पहलक़दमी करेगी। सम्पर्कों को सुगम बनाने के लिए जनरल कौंसिल समय-समय पर रिपोर्टें प्रकाशित किया करेगी।

7. चूंकि प्रत्येक देश में मज़दूर आन्दोलन की सफलता ऐक्यबद्धता तथा संगठन की शक्ति के अलावा और किसी तरह सुनिश्चित नहीं की जा सकती, और चूंकि दूसरी ओर जनरल कौंसिल की उपयोगिता बहुत कुछ इस परिस्थिति पर निर्भर करती है कि उसे मज़दूरों की संस्थाओं के चन्द राष्ट्रीय केन्द्रों से अथवा छोटी-छोटी, असम्बद्ध स्थानीय सोसायटियों की बहुत बड़ी तादाद से निबटना पड़ता है, इसलिए इंटरनेशनल के सदस्यों को मज़दूरों की अपने-अपने देशों की असम्बद्ध सोसायटियों को राष्ट्रीय संगठनों में, जिनका केन्द्रीय राष्ट्रीय निकाय प्रतिनिधित्व करें, मिलाने के लिए अधिकतम प्रयास करने चाहिए। परन्तु यह स्वतःस्पष्ट है कि इस नियम का लागू किया जाना हर देश के विशिष्ट क़ानूनों पर

निर्भर करता है, और स्थानीय बाधाओं के अलावा किसी भी अन्य स्थिति में कोई भी स्वतन्त्र स्थानीय सोसायटी जनरल कौंसिल के सीधे पत्र-व्यवहार करने से विमुख नहीं रखी जायेगी।*

8. हर शाखा को जनरल कौंसिल से पत्र-व्यवहार करने के लिए अपना सचिव नियुक्त करने का अधिकार होगा।

9. जो कोई इंटरनेशनल के सिद्धान्त स्वीकार करता है तथा उनकी रक्षा करता है, वह सदस्य बनने का अधिकारी है। हर शाखा अपने सदस्यों की, जिन्हें वह भर्ती करती है, ईमानदारी के लिए उत्तरदायी है।

10. जो कोई सदस्य एक देश से दूसरे देश में जा बसता है, उसे संघ में ऐक्यबद्ध मज़दूरों को बन्धुत्वपूर्ण समर्थन प्राप्त होगा।

11. इंटरनेशनल में शामिल होनेवाली मज़दूर सोसायटियां जहां बन्धुत्वपूर्ण सहयोग के स्थायी सूत्र में बंधी रहेंगी, वहां वे अपने विद्यमान संगठनों को अक्षुण्ण रखेंगी।

12. वर्तमान नियमावली को प्रत्येक कांग्रेस संशोधित कर सकती है, बशर्ते प्रतिनिधियों का दो-तिहाई भाग ऐसे संशोधन के पक्ष में हो।

13. वर्तमान नियमावली में जो कुछ नहीं दिया जा सकता है, उन सबकी विशेष अधिनियमों द्वारा व्यवस्था की जायेगी जिन्हें हर कांग्रेस संशोधित कर सकती है।

256, हाई हॉलबोर्न, डब्ल्यू. सी. लन्दन,
24 अक्टूबर 1871।

---

* 1872 की हेग कांग्रेस के निर्णयानुसार नियमावली में धारा 7 के बाद एक अतिरिक्त धारा 7 क जोड़ी गयी थी।

3
अस्थायी जनरल कौंसिल के डेलीगेटों के लिए निर्देश : विभिन्न प्रश्न

कार्ल मार्क्स

1. इंटरनेशनल का संगठन

अस्थायी जनरल कौंसिल सामान्यतया तथा कुल मिलाकर अस्थायी नियमावली में निरूपित **संगठन की योजना** को स्वीकृति देने की सिफारिश करती है। इस योजना की परिशुद्धता तथा कार्रवाई की एकता को आंच पहुंचाये बिना उसे विभिन्न देशों में लागू करने की सम्भावना को दो वर्षों के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि केन्द्रीय परिषद का कार्यालय आगामी वर्ष लन्दन में ही रहे क्योंकि महाद्वीप में स्थिति परिवर्तन के लिए प्रतिकूल प्रतीत होती है।

केन्द्रीय परिषद के सदस्य निस्सन्देह कांग्रेस द्वारा निर्वाचित होंगे (अस्थायी नियमावली की धारा 5), उन्हें अपनी संख्या बढ़ाने का अधिकार होगा।

महासचिव कांग्रेस द्वारा एक वर्ष के लिए चुना जायेगा और केवल वहीं संघ का एकमात्र वेतनभोगी अधिकारी होगा। हमारा प्रस्ताव है कि उसका साप्ताहिक वेतन 2 पौंड हो।

संघ के प्रत्येक सदस्य का एक समान वार्षिक चन्दा होगा **आधा पेनी** (शायद एक पेनी)। सदस्यता के कार्ड पर होनेवाला खर्चा अलग से देना होगा।

जहां हम संघ के सदस्यों का आह्वान करते हैं कि वे पारस्परिक सहायता सोसायटियां स्थापित करें तथा उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सूत्र में बांध दें, वहां हम इस प्रश्न

पर (पारस्परिक सहायता सोसायटियों की स्थापना; संघ के सदस्यों के निराश्रित लोगों को नैतिक तथा भौतिक सहायता) पहल स्विस संगठन पर छोड़ देते हैं जिसने गत सितम्बर के सम्मेलन में सबसे पहले यह प्रस्ताव किया था।

2. श्रम तथा पूंजी के बीच संघर्ष में संघ की सहायता से कार्यकलाप की अन्तर्राष्ट्रीय ऐक्यबद्धता

(क) आम दृष्टिकोण से इस प्रश्न की परिधि में अन्तर्राष्ट्रीय संघ का पूरा कार्यकलाप आ जाता है जिसका लक्ष्य भिन्न-भिन्न देशों में मज़दूर वर्गों की मुक्ति के लिए अब तक के असम्बद्ध कार्यकलापों को सूत्रबद्ध करना तथा उनका सामान्यीकरण करना है।

(ख) हड़तालों और तालाबन्दियों की हालत में देशी मज़दूरों के ख़िलाफ़ एक साधन के रूप में विदेशी मज़दूरों का दुरुपयोग करने के लिए हमेशा तैयार पूंजीपतियों की तिकड़मों का मुकाबला करना एक ऐसा काम है जिसे हमारे संघ ने अब तक सफलतापूर्वक पूरा किया है। संघ के महान उद्देश्यों में से एक यह है कि विभिन्न देशों के मज़दूर मुक्ति की सेना में न सिर्फ भाइयों तथा साथियों की तरह **अनुभव करें**, वरन् इसी भावना से **काम भी करें।**

(ग) "कार्यकलाप की अन्तर्राष्ट्रीय एकता" के एक बढ़े दृष्टान्त के रूप में हम सुझाव देते हैं कि **स्वयं मज़दूर वर्ग तमाम देशों में मज़दूर वर्गों की स्थिति की सांख्यिकीय जांच करें।** सफलता हासिल करने के लिए इस्तेमाल में आनेवाली सामग्री ज्ञात होनी चाहिए। इतना बड़ा काम शुरू कर मज़दूर अपने भाग्य की बागडोर अपने हाथ में ले सकने की क्षमता सिद्ध कर देंगे। इसलिए हम प्रस्ताव करते हैं–

कि प्रत्येक बस्ती में, जहां हमारे संघ की शाखाएं मौजूद हैं, तुरन्त काम शुरू किया जाये तथा जांच की संलग्न योजना में बताये गये विभिन्न मुद्दों पर तथ्यात्मक सामग्री एकत्र की जाये।

कि कांग्रेस यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका में तमाम मज़दूरों को मज़दूर वर्ग के बारे में सांख्यिकीय सामग्री एकत्र करने के लिए आमंत्रित करे; कि रिपोर्टों और तथ्यों को केन्द्रीय परिषद के पास भेजा जाये। कि केन्द्रीय परिषद उनका विशदीकरण कर एक आम रिपोर्ट बनाये तथा तथ्यात्मक सूचना को परिशिष्ट के रूप में नत्थी करे।

कि यह रिपोर्ट परिशिष्ट के साथ आगामी वार्षिक कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत की जाये और कांग्रेस की स्वीकृति की प्राप्ति के बाद उसे संघ के ख़र्च पर प्रकाशित किया जाये।

जांच की आम योजना जिसमें निस्सन्देह हर क्षेत्र में परिवर्तन किये जा सकते हैं

1. उद्योग का नाम।

2. काम पर लगे व्यक्तियों की आयु, वे स्त्री हैं या पुरुष।

3. काम पर लगे व्यक्तियों की संख्या।

4. वेतन तथा मज़दूरी–(क) प्रशिक्षार्थी; (ख) मज़दूरी दिन अथवा काम की मात्रा के हिसाब से; बिचौलियों द्वारा दी जाने वाली मज़दूरी का मान। औसत साप्ताहिक, वार्षिक मज़दूरी।

5. (क) कारख़ानों में काम के घंटे। (ख) छोटे मालिकों के पास और घर पर काम के घंटे–अगर काम इन भिन्न-भिन्न विधियों से होता है। (ग) रात का काम और दिन का काम।

6. भोजन का समय और मज़दूरी के साथ बर्ताव।

7. वर्कशाप का स्वरूप तथा श्रम की हालत : जगह की तंगी, दोषपूर्ण हवादारी, सूरज की रोशनी का अभाव, गैस की रोशनी का उपयोग। सफ़ाई, आदि।

8. व्यवसाय का स्वरूप।

9. श्रम का शारीरिक अवस्था पर प्रभाव।

10. नैतिक अवस्था। शिक्षा।

11. उद्योग की स्थिति : क्या वह मौसमी रूप से काम करता है अथवा कमोबेश पूरे साल चलता है, क्या उसमें बहुत उतार-चढ़ाव आता है, क्या उसे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है, क्या वह मुख्यतया घरेलू अथवा विदेशी मंडी के लिए होता है, आदि।

3. कार्य-दिवस सीमित करना

एक प्रारम्भिक शर्त है **कार्य-दिवस सीमित करना**, जिसके बिना सुधार तथा मुक्ति के लिए आगे की सारी कोशिशें निश्चित रूप से विफल होंगी।

इसकी मज़दूर वर्ग को, जो प्रत्येक राष्ट्र का बहुत बड़ा भाग होता है, फिर से स्वस्थ और शारीरिक दृष्टि से सशक्त बनाने के लिए, उसके बौद्धिक विकास, सामाजिक संसर्ग, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकलाप की सम्भावना मुहैया करने की ज़रूरत पड़ती है।

हम कार्य-दिवस की **क़ानूनी सीमा के रूप में आठ घंटे** के कार्य का प्रस्ताव पेश करते हैं। इस सीमा की संयुक्त राज्य अमरीका के सभी मेहनतकश लोग मांग कर रहे हैं; कांग्रेस का निर्णय इसे संसार भर के मज़दूर वर्गों का आम मंच बना देगा।

महाद्वीप में सदस्यों की, जिनका फ़ैक्टरी-क़ानून का अनुभव अभी अपेक्षाकृत अल्पकालिक है, जानकारी के लिए हम यहां इतना और बता देना चाहते हैं कि यदि **दिन की अवधि** जिसमें काम के आठ घंटे होने चाहिए, नियत नहीं की गयी तो सारे क़ानूनी प्रतिबंध विफल हो जायेंगे तथा उन्हें पूंजी भंग कर देगी। इस समय की अवधि काम के आठ घंटों द्वारा तथा भोजन के लिए अतिरिक्त समय द्वारा नियत होनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि भोजन के लिए बीच-बीच में दी जानेवाली छुट्टी **एक घंटे** के बराबर हो तो दिन की क़ानूनी अवधि 9 घंटे की होनी चाहिए जैसे सुबह के 7 बजे से शाम 4 बजे तक अथवा सुबह के 8 बजे से शाम के 5 बजे तक। रात के काम की उन उद्योगों या उद्योगों की शाखाओं में अपवाद-स्वरूप ही इजाज़त दी जानी चाहिए, जो क़ानून द्वारा निर्दिष्ट हों। कोशिश यह होनी चाहिए कि रात्रिकालीन श्रम बिल्कुल न हो।

यह पैराग्राफ़ केवल व्यस्कों–नर या नारी–के बारे में हैं, परन्तु स्त्रियों को **सारे रात्रिकालीन श्रम से**, वह चाहे कैसा ही हो, और ऐसे तमाम कामों से कड़ाई के साथ अलग रखा जाये जो कमनीय नारी शरीर के लिए हानिप्रद होते हैं अथवा जिनके कारण उनके शरीर पर जहरीली अथवा अन्य हानिकारक सामग्रियों का प्रभाव पड़ता है। व्यस्क व्यक्तियों से हमारा तात्पर्य ऐसे तमाम व्यक्तियों से है जिनकी आयु 18 वर्ष की हो चुकी हो या जो इससे ज़्यादा है।

4. बच्चों तथा किशोरों का श्रम (नर और नारी दोनों)

हम बच्चों तथा किशोरों को–नर और नारी दोनों–सामाजिक उत्पादन के महान कार्य में लगाने की आधुनिक उद्योग की प्रवृत्ति को प्रगतिशील, दुरुस्त तथा

न्यायोचित मानते हैं हालांकि पूंजी के अन्तर्गत इसे विकृत कर घृणित वस्तु बना दिया गया। समाज की विवेकसम्मत अवस्था में **हर बालक** को 9 वर्ष से ऊपर उसी प्रकार उत्पादक श्रमिक होना चाहिए जिस प्रकार किसी भी समर्थांग व्यस्क को प्रकृति के आम नियम से, अर्थात् इस नियम से छूट नहीं दी जानी चाहिए कि : भोजनप्राप्ति के लिए काम करना ज़रूरी है,और दिमाग़ से ही नहीं, वरन् हाथों से भी काम करना।

परन्तु हम फ़िलहाल मज़दूरों के परिवारों के बच्चों तथा किशोरों को–वे चाहे नर हों या नारी–लेकर विचार करेंगे। उन्हें **तीन समूहों** में बांटना होगा, जिनके साथ भिन्न-भिन्न रूप से व्यवहार किया जाना चाहिए–पहला समूह 9 साल से 12 साल तक, दूसरा समूह 13 साल से 15 साल तक तथा तीसरा समूह 16 और 17 साल। हमारा प्रस्ताव है कि किसी भी वर्कशाप में या घर पर काम के लिए पहले समूह के वास्ते **दो** घंटे, दूसरे समूह के लिए **चार** घंटे तथा तीसरे समूह के लिए **छ** घंटे क़ानूनी तौर पर नियत किये जायें। तीसरे समूह के लिए भोजन या आराम के लिए कम से कम एक घंटे की छुट्टी हो।

9 वर्ष की आयु से पहले प्राथमिक स्कूली शिक्षा लागू करना वांछनीय होगा, लेकिन यहां हम ऐसी सामाजिक प्रणाली की प्रवृत्तियों के विरुद्ध सबसे अपरिहार्य उपचारों की चर्चा कर रहे हैं, जो मेहनतकश इन्सान को पूंजी के संचय के औज़ार की दुःस्थिति में पहुंचा देती है तथा मां-बाप को अपनी आवश्यकताओं के कारण दास-स्वामी, अपने बच्चों का विक्रेता बना देती है। बच्चों तथा किशोरों के **अधिकार** की रक्षा की जानी चाहिए। वे स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए कार्रवाई करने में असमर्थ हैं। अतः यह समाज का कर्तव्य है कि वह उनकी ओर से कार्रवाई करे।

यदि पूंजीपति वर्ग तथा उच्च वर्ग अपनी सन्तान के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हैं तो यह उनका दोष है। इन वर्गों के विशेषाधिकारों का उपभोग करने के कारण बच्चे को उनके पूर्वाग्रहों का शिकार बनना पड़ता है।

मज़दूर वर्ग का मामला बिल्कुल भिन्न है। मज़दूर अपने कार्यकलाप में स्वतंत्र नहीं होता। बहुत सारे मामलों में तो उसमें इतना अज्ञान होता है कि वह अपने बच्चे के वास्तविक हित तथा मानव-विकास की सामान्य परिस्थितियों तक को नहीं समझ सकता। परन्तु मज़दूर वर्ग का अधिक जागरूक भाग पूरी तरह समझता है

कि उसके वर्ग का भविष्य और इस कारण मानवजाति का भविष्य पूरी तरह मज़दूरों की उगती हुई पीढ़ी के लालन-पालन और शिक्षा पर निर्भर करता है। वह जानता है कि सर्वोपरि बाल और किशोर श्रमिकों को वर्तमान व्यवस्था के विनाशकारी प्रभाव से बचाया जाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब **सामाजिक चेतना** को **सामाजिक शक्ति** में बदल दिया जायेगा और वर्तमान परिस्थितियों में यह कार्य **आम क़ानूनों** द्वारा, जिन्हें राज्य की शक्ति से लागू किया जाये, सम्पन्न करने के अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है। ऐसे क़ानूनों को लागू करने में मज़दूर वर्ग सरकारी सत्ता को मज़बूत नहीं बनाता। इसके विपरीत वह इस समय अपने विरुद्ध इस्तेमाल होनेवाली उस सत्ता को अपने ही साधन में बदल देता है। वह एक आम क़ानूनी कार्रवाई द्वारा वह काम पूरा कर देता है जिसे वह अनगिनत अलग-थलग व्यक्तिगत प्रयासों से पूरा करने की निरर्थक चेष्टा करता है।

इस आधार बिन्दु से अग्रसर होते हुए हम घोषित करते हैं कि किसी भी मां-बाप या मालिक को बाल-श्रम का, यदि वह शिक्षा से जुड़ा हुआ न हो, उपयोग करने की इजाज़त नहीं मिलनी चाहिए।

शिक्षा से हमारा तात्पर्य तीन चीज़ों से है।

पहली, **मानसिक शिक्षा**।

दूसरी, **शारीरिक प्रशिक्षण**, जो स्कूलों में व्यायाम द्वारा या सैनिक अभ्यास द्वारा दिया जाता है।

तीसरी, **तकनीकी शिक्षा**, जो उत्पादन की तमाम प्रक्रियाओं के आम सिद्धान्त सिखाती है तथा साथ ही बच्चे और किशोर को तमाम व्यवसायों के प्राथमिक औज़ारों का व्यावहारिक उपयोग करना सिखाती है।

मानसिक, शारीरिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण का उत्तरोत्तर जटिल होनेवाला पाठ्यक्रम बाल तथा किशोर श्रमिकों के वर्गीकरण के अनुरूप होना चाहिए। तकनीकी स्कूलों पर आनेवाला ख़र्चा अंशतः उनके उत्पादों की बिक्री द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।

पारिश्रमिक युक्त उत्पादक श्रम, मानसिक शिक्षा, शारीरिक व्यायाम तथा पोलिटेक्निकल प्रशिक्षण को समन्वित करने से मज़दूर वर्ग अभिजात तथा पूंजीपति वर्गों के स्तर से कहीं ऊपर उठ जायेगा।

निस्सन्देह 9 से 17 साल तक के सारे लोगों से रात को काम लेने तथा उन्हें स्वास्थ्य को नुक़सान पहुंचानेवाले सारे व्यवसायों में लगाने पर क़ानून द्वारा कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

5. सहकारी श्रम

इंटरनेशनल का यह काम है कि यह मज़दूर वर्गों के स्वतःस्फूर्त **आन्दोलनों** को ऐक्यबद्ध करे तथा उनको एक समान प्रवृत्ति प्रदान करे, न कि किसी भी तरह की जड़सूत्रवादी प्रणाली उनके सिर पर थोपे या उनको अंगीकार करने का आदेश दे। इसलिए कांग्रेस को सहकारिता की कोई **विशेष प्रणाली** उद्घोषित नहीं करनी चाहिए बल्कि अपने को चन्द आम सिद्धान्तों के निरूपण तक सीमित रखना चाहिए।

(क) हम यह मानते हैं कि सहकारी आन्दोलन वर्ग वैरभाव पर आधारित वर्तमान समाज की रूपान्तरणकारी शक्तियों में से एक है। उसकी बहुत बड़ी विशेषता व्यावहारिक रूप से यह प्रदर्शित करना है कि **श्रम को** पूंजी के **मातहत बनानेवाली** वर्तमान प्रणाली का स्थान, जो दरिद्रीकरण करती है और निरंकुश है, **स्वतंत्र तथा एक समान उत्पादकों के संघ** की लोकतंत्रीय तथा कल्याणकारी प्रणाली ले सकती है।

(ख) परन्तु उन रूपों के बौनेपन के कारण, जिनका अलग-अलग उजरती दास अपने निजी प्रयत्नों द्वारा सृजन कर सकते हैं, सहकारी प्रणाली कभी पूंजीवादी समाज का रूपान्तरण नहीं कर सकती। सामाजिक उत्पादन को मुक्त तथा सहकारी श्रम की एक बड़ी तथा सामंजस्यपूर्ण प्रणाली में बदलने के लिए **आम सामाजिक परिवर्तनों** की, **समाज की उन आम परिस्थितियों के परिवर्तनों** की ज़रूरत पड़ती है जिन्हें समाज को संगठित शक्तियों को, अर्थात् राजकीय सत्ता को, पूंजीपतियों तथा ज़मींदारों से छीन कर उसे स्वयं उत्पादकों के हाथों में सौंपे बिना कभी मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता।

(ग) हम मज़दूरों से सिफ़ारिश करते हैं कि वे **सहकारी व्यापार** के बजाय **सहकारी उत्पादन** को तरजीह दें। सहकारी व्यापार वर्तमान आर्थिक प्रणाली की केवल सतह को ही छूता है, जबकि सहकारी उत्पादन उसकी जड़ पर ही चोट करता है।

(घ) हम तमाम सहकारी सोसायटियों से सिफ़ारिश करते हैं कि वे उदाहरण और साथ ही शब्दों द्वारा, दूसरे शब्दों में नये उत्पादन-सहकारी सोसायटियों की स्थापना द्वारा, साथ ही अपनी शिक्षा के प्रसार द्वारा अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अपनी संयुक्त आय के एक अंश को एक निधि में परिणत करें।

(ङ) सहकारी सोसायटियों का साधारण पूंजीवादी ज्वायंट स्टाक कम्पनियों (sociétés par actions) में अधःपतन रोकने के लिए काम करनेवाले सारे मज़दूरों को, वे चाहे शेयरहोल्ड हों या न हों, बराबर शेयर दिया जाना चाहिए। हम मात्र अस्थायी पग के रूप में यह सम्भावना मानने को तैयार हैं कि शेयरहोल्डरों को कुछ ब्याज मिलता रहे।

6. ट्रेड यूनियनें। उनका अतीत, वर्तमान तथा भविष्य

(क) उनका अतीत।

पूंजी संकेन्द्रित सामाजिक शक्ति है, जबकि मज़दूर के पास केवल अपनी श्रम-शक्ति होती है। इसलिए पूंजी तथा श्रम के बीच **क़रार** कभी बराबरी की शर्तों पर नहीं हो सकता, ऐसे समाज की दृष्टि से भी बराबर नहीं हो सकता जो अस्तित्व तथा श्रम के भौतिक साधनों को एक ओर तथा मौलिक उत्पादक शक्तियों को दूसरी ओर रखता है। मज़दूरों की एकमात्र सामाजिक शक्ति उनकी तादाद है। परन्तु तादाद की शक्ति को उनकी प्रथकता भंग कर देती है। मज़दूरों की यह पृथकता **उनके मध्य अपरिहार्य प्रतियोगिता** द्वारा उत्पन्न होती तथा बरक़रार रखी जाती है।

ट्रेड यूनियनों का मूलतः आविर्भाव इस प्रतियोगिता को मिटाने या कम से कम इसे रोकने के लिए मज़दूरों के **स्वतःस्फूर्त** प्रयत्नों से हुआ जिनका उद्देश्य क़रार की ऐसी शर्तें हासिल करना था जो उन्हें कम से कम मात्र दासों के स्तर से ऊपर उठा सकतीं। इसलिए ट्रेड यूनियनों का तात्कालिक लक्ष्य रोज़मर्रा की ज़रूरतों तक, पूंजी के निरन्तर आक्रमणों की राह में बाधा डालने के प्रयत्नों तक, दूसरे शब्दों में मज़दूरी और श्रम के समय सम्बन्धी प्रश्नों तक सीमित रहा। ट्रेड यूनियनों का यह क्रियाकलाप न्यायोचित ही नहीं, वरन् आवश्यक है। इसका तब तक त्याग नहीं किया जा सकता जब तक उत्पादन की वर्तमान प्रणाली क़ायम रहेगी। इससे भी अधिक तमाम देशों में ट्रेड यूनियनों की स्थापना तथा एकजुटता

द्वारा इस कार्यकलाप को विश्वव्यापी रूप दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर ट्रेड यूनियनें अनजाने ही मज़दूर वर्ग के लिए **संगठन-केन्द्र** उसी तरह स्थापित कर रही थीं जिस तरह मध्ययुगीन म्युनिसपलिटियों तथा कम्यूनों ने पूंजीपति वर्ग के लिए संगठन-केन्द्र स्थापित किये थे। यदि ट्रेड यूनियनों की पूंजी तथा श्रम के बीच छापामार लड़ाई के लिए ज़रूरत पड़ती है तो वे **संगठित शक्ति के रूप में उजरती श्रम तथा पूंजी के शासन की प्रणाली को खत्म करने के लिए और भी महत्वपूर्ण हैं**।

(ख) उनका वर्तमान।

पूंजी के विरुद्ध स्थानीय तथा तात्कालिक संघर्षों में विशिष्ट रूप से व्यस्त रहने के कारण ट्रेड यूनियनें उजरती दासता की प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष करने की अपनी शक्ति को अभी तक स्वयं नहीं पहचान पायी हैं। इसलिए उन्होंने अपने को आम सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों से बहुत दूर रखा है। परन्तु इधर उनमें अपने महान ऐतिहासिक मिशन की कुछ चेतना उत्पन्न होती प्रतीत होती है; इसका प्रमाण, उदाहरण के लिए, इंगलैंड में हाल के राजनीतिक आन्दोलन में उनकी शिरक़त, संयुक्त राज्य अमरीका में अपने क्रियाकलाप के बारे में व्यापक दृष्टिकोण तथा शेफ़ील्ड में ट्रेड यूनियनों के डेलीगेटों के हाल में विशाल सम्मेलन में पास किया गया निम्नलिखित प्रस्ताव है :

> "यह सम्मेलन तमाम देशों के मज़दूरों को भाईचारे के एक सूत्र में बांधने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ के प्रयत्नों की क़द्र करते हुए यहां प्रतिनिधित्वप्राप्त तमाम सोसायटियों से इस संघ के साथ सम्बद्ध होने की आग्रहपूर्वक सिफ़रिश करता है, इसे वह पूरी मेहनतकश जनता की प्रगति तथा समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण मानता है।"

(ग) उनका भविष्य।

उनके प्राथमिक उद्देश्य कुछ भी हों उन्हें अब मज़दूर वर्ग की **पूर्ण मुक्ति** के व्यापक हितार्थ उसके संगठनकारी केन्द्रों के रूप में सचेत रूप में कार्य करना सीखना चाहिए। उन्हें इस दिशा की ओर उन्मुख प्रत्येक सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन का समर्थन करना चाहिए। अपने को पूरे मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधि मानते हुए और उसके हितों की वकालत करते हुए वे सोसायटी से बाहर के लोगों को अपनी क़तारों में शामिल करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं। उन्हें सबसे कम

पारिश्रमिक वाले व्यवसायों के, उदाहरण के लिए खेत-मज़दूरों के, जिन्हें असाधारण परिस्थितियों ने असहाय बना दिया, हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। उन्हें पूरे संसार के सामने यह प्रदर्शित करना चाहिए कि उनके प्रयत्न संकीर्ण तथा स्वार्थपूर्ण नहीं हैं अपितु उनका लक्ष्य करोड़ों पददलित लोगों को मुक्ति दिलाना है।

7. प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली

(क) कर-प्रणाली के रूप में कोई भी संशोधन श्रम तथा पूंजी के बीच सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकते।

(ख) फिर भी यदि कर-प्रणाली के दो रूपों में से कोई चुनना हो तो हम **अप्रत्यक्ष करों की पूर्ण समाप्ति** तथा **प्रत्यक्ष करों के आम प्रतिस्थापन** की सिफ़ारिश करते हैं।

चूंकि अप्रत्यक्ष कर माल की क़ीमतें बढ़ाते हैं, इसलिए उन क़ीमतों में व्यापारी अप्रत्यक्ष करों की राशि ही नहीं, वरन् उनके भुगतान के लिए अदा की जानेवाली पूंजी में ब्याज तथा मुनाफ़ा भी जोड़ देते हैं।

चूंकि अप्रत्यक्ष कर व्यक्ति से वह रक़म छुपाता है जो वह राज्य को अदा करता है, जबकि प्रत्यक्ष कर अप्रच्छन्न होता है, खुले रूप में दिया जाता है तथा वह अज्ञानी व्यक्ति को भी भ्रम में नहीं डालता। इसलिए प्रत्यक्ष कर-प्रणाली प्रत्येक व्यक्ति को सरकार पर नियंत्रण करने के लिए प्रेरित करती है जबकि अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली स्वशासन की दिशा में सारी प्रवृत्तियां नष्ट कर देती है।

8. अन्तर्राष्ट्रीय साख

पहलक़दमी फ़्रांसीसियों के लिए छोड़ दी जाये।

9. पोलिश प्रश्न

(क) यूरोप के मज़दूर यह प्रश्न क्यों उठाते हैं? सबसे पहले इसलिए कि पूंजीवादी लेखक तथा आन्दोलनकारी उसपर ख़ामोश रहने का षड्यंत्र रचते हैं हालांकि वे महाद्वीप में, यहां तक कि आयरलैंड में भी सब तरह की जातियों को संरक्षण देते हैं। यह ख़ामोशी क्यों? इसलिए कि अभिजात और पूंजीपति दोनों

काली एशियाई शक्ति को, जो पृष्ठभूमि में खड़ी है, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन की बढ़ती लहर के विरुद्ध आख़िरी साधन के रूप में देखते हैं। इस शक्ति को केवल पोलैंड की जनवादी आधार पर पुनर्स्थापना के द्वारा ही वास्तविक रूप में कुचला जा सकता है।

(ख) मध्य यूरोप और विशेष रूप से जर्मनी में इस समय परिवर्तित स्थिति में जनवादी पोलैंड का अस्तित्व हासिल करना पहले से कहीं ज़्यादा आवश्यक है। उसके बिना जर्मनी पुनीत संघ की अग्रिम चौकी बन जायेगा और उसके होने पर वह जनतंत्रीय फ़्रांस का सहयोगी बन जायेगा। मज़दूर आन्दोलन को जब तक निरन्तर रोका, परास्त तथा अवरुद्ध किया जाता रहेगा जब तक यह महत्वपूर्ण यूरोपीय प्रश्न तय नहीं हो जाता।

(ग) इस मामले में पहलक़दमी करना विशेष रूप से जर्मन मज़दूर वर्ग की ज़िम्मेवारी है क्योंकि जर्मनी पोलैंड का विभाजन करनेवालों में से एक है।

10. सेनाएं

(क) बहुत बड़ी स्थायी सेनाओं का **उत्पादन** पर पड़नेवाले हानिकर प्रभाव का सब तरह के नामों वाली पूंजीवादी कांग्रेसों–शान्ति कांग्रेसों, आर्थिक कांग्रेसों, सांख्यिकीय कांग्रेसों, परोपकारी कांग्रेसों, समाजशास्त्रीय कांग्रेसों–में पर्याप्त रूप से पर्दाफ़ाश किया जा चुका है। इसलिए हम इस मुद्दे पर विस्तापूर्वक बात करना सर्वथा अनावश्यक मानते हैं।

(ख) हम जनता की आम हथियारबन्दी और हथियारों के उपयोग के लिए उसे आम शिक्षा देने का प्रस्ताव करते हैं।

(ग) हम छोटी स्थायी सेनाओं को मिलिशिया के अफ़सरों के लिए विद्यालय के रूप में इस्तेमाल करना एक अस्थायी आवश्यकता मानते हैं, प्रत्येक पुरुष नागरिक को इन सेनाओं में अत्यन्त सीमित समय के लिए काम करना होगा।

11. धर्म का प्रश्न

पहलक़दमी फ़्रांसीसियों के लिए छोड़ दी जाये।

4

फ़्रांको-एशियाई युद्ध के बारे में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की पहली चिट्ठी

कार्ल मार्क्स

यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका में इंटरनेशनल के सदस्यों के नाम

इंटरनेशनल के नवम्बर 1864 की उद्घाटन घोषणा में हमने कहा था : "यदि मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए यह आवश्यक है कि मज़दूरों में भ्रातृत्वपूर्ण मतैक्य हो, तो वे अपना यह महान् उद्देश्य मुजरिमाना मंसूबों पर आश्रित ऐसी विदेश नीति के रहते हुए किस प्रकार पूरा कर सकते हैं, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों का स्वार्थपूर्ण उपयोग किया जाता है और लुटेरे युद्धों में जनता का ख़ून और धन पानी की तरह बहाया जाता है?" इन्टरनेशनल जिस विदेश नीति को अपना लक्ष्य मानता है उसकी परिभाषा हमने इन शब्दों में की थी : "... व्यक्तियों के ज़ाती सम्बन्ध नैतिकता तथा न्याय के जिन सीधे-सादे नियमों द्वारा निर्देशित होने चाहिए, उन्हीं का राष्ट्रों के परस्पर संसर्ग में प्रधानतम नियमों कमे रूप में पालन किया जाये।"

इसमें तनिक भी आश्चर्य की बात नहीं कि लूई बोनापार्त, जिसने फ़्रांस में वर्गों के बीच युद्ध का लाभ उठाकर सत्ता का अपहरण किया और समय-समय पर विदेशों में युद्ध छेड़कर उसे क़ायम रखा, आरम्भ से ही इन्टरनेशनल को एक ख़तरनाक शत्रु समझता था। जनमत-संग्रह के ठीक पहले उसने फ़्रांस भर में—पेरिस, लियों, रूएं, मार्सेई, ब्रेस्त, आदि में—इंटरनेशनल की प्रशासन कमेटियों के सदस्यों पर इस झूठे बहाने से छापे कराये कि इन्टरनेशनल एक गुप्त संगठन है, जो उसकी

हत्या के षड्यंत्र में लगा हुआ है। जल्द ही इस बहाने के बेतुकेपन का पूरा पर्दाफ़ाश खुद उसके ही जजों द्वारा हो गया। इन्टरनेशनल की फ़्रांसीसी शाखाओं का असली अपराध क्या था? उनका असली अपराध यह था कि उन्होंने फ़्रांस की जनता से खुले रूप में और ज़ोर देकर कहा था कि जनमत-संग्रह में वोट देना देश में निरंकुशता और विदेश में युद्ध के लिए वोट देना है। वस्तुतः यह उनके ही काम का फल था कि फ़्रांस के सभी बड़े शहरों में, सभी औद्योगिक केन्द्रों में मज़दूर वर्ग ने एकमत में जनमत-संग्रह को ठुकरा दिया। दुर्भाग्यवश, देहाती क्षेत्रों में भारी अज्ञान ने पलड़ा पलट दिया। यूरोप के शेयर-बाज़ारों, मंत्रिमंडलों, शासक वर्गों और अख़बारों ने जनमत-संग्रह को फ़्रांस के मज़दूर वर्ग पर फ़्रांस के सम्राट की शानदार विजय मानकर उस पर हर्ष प्रकट किया; और दरअसल यह किसी एक व्यक्ति की नहीं, अपितु पूरे के पूरे राष्ट्रों की हत्या के लिए हरी झंडी थी।

जुलाई 1870 का युद्ध-षड्यंत्र दिसम्बर 1851 के राज्य-पर्युत्क्षेपण का एक संशोधित संस्करण मात्र है। पहली दृष्टि में मामला इतना असंगत ज्ञात होता था कि फ़्रांस ने यथार्थतः इसकी वास्तविकता में विश्वास नहीं किया। लोगों ने असल में उन प्रतिनिधि जूल फ़ाव्र पर ज़्यादा विश्वास किया, जिसने मंत्रियों की युद्ध की बातों को स्टाक-दलाली की तिकड़म कहा था। अन्ततः 15 जुलाई को जब विधान सभा को युद्ध की सरकारी तौर पर सूचना दी गयी, तो पूरे विरोध-पक्ष ने प्रारम्भिक धनानुदान के लिए वोट करने से इनकार कर दिया; थियेर तक ने युद्ध को "जघन्य" कहा। पेरिस के सभी स्वतंत्र पत्रों ने इसकी निन्दा की, और मज़ेदार बात तो यह थी कि प्रान्तीय अख़बारों ने भी लगभग एक स्वर से निन्दा की।

इस दरमियान इन्टरनेशनल के पेरिस सदस्य फिर अपने कार्य में जुट गये थे। उन्होंने 12 जुलाई के *«Rèveil»* में 'सभी राष्ट्रों के मज़दूरों के नाम' अपना घोषणापत्र प्रकाशित किया, जिसके कुछ अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

> "यूरोपीय सन्तुलन के नाम पर, राष्ट्रीय सम्मान के नाम पर एक बार फिर विश्वशांति राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं द्वारा ख़तरे में डाल दी गयी है। फ़्रांस, जर्मनी और स्पेन के मज़दूरों! आओ, हम सब एक स्वर में युद्ध के ख़िलाफ़ उसे धिक्कारते हुए आवाज़ उठाएं! प्रभुत्व या राजवंश के सवाल पर युद्ध मज़दूरों की निगाह में मुजरिमाना बेहूदेपन के अलावा और कुछ नहीं हो सकता। उन लोगों की जंगी घोषणाओं के जवाब में, जो अपने को 'रक्त-कर' से बरी रखते हैं और जो जनता के दुर्भाग्य को नित्य-नई सट्टेबाज़ी का साधन मानते हैं, हम शान्ति,

> श्रम और स्वतंत्रता चाहनेवाले मज़दूर विरोध की आवाज़ बुलन्द करते हैं! जर्मनी के भाइयों! यदि हम विभक्त रहे तो उसका एकमात्र परिणाम यह होगा कि राइन नदी के दोनों ओर निरंकुशता की पूर्ण विजय होगी... प्रत्येक देश के मज़दूरों! हमारे सम्मिलित प्रयासों का इस समय चाहे जो भी नतीजा निकले, हम, इंटरनेशनल के सदस्य, जो किसी राज्यीय सीमा के बंधे हुए नहीं हैं, अपनी अटूट एकजुटता के प्रतीकस्वरूप आपको फ़्रांस के मज़दूरों की शुभकानाएं और अभिवादन भेजते हैं।"

हमारी पेरिस शाखा के इस घोषणापत्र के बाद इसी तरह की अनेक फ़्रांसीसी घोषणाएं निकलीं। इनमें से यहां हम केवल एक, न्यूई-स्युर-सेन की घोषणा को ही उद्धृत कर सकते हैं, जो 22 जुलाई के «Marseillaise» में प्रकाशित हुई थी :

> "यह युद्ध, क्या यह न्यायसंगत है? नहीं! यह युद्ध, क्या यह राष्ट्रीय है? नहीं! यह केवल राजवंशीय युद्ध है। मानवता, जनवाद और फ़्रांस के सच्चे हितों के नाम पर हम पूरी तरह और ज़ोरदार तरीक़े से युद्ध के विरुद्ध इन्टरनेशनल के प्रतिवाद का समर्थन करते हैं।"

इन प्रतिवादों ने फ़्रांस के मज़दूरों की वास्तविक भावना ज़ाहिर कर दी, जो शीघ्र ही एक अनोखी घटना द्वारा सिद्ध हो गयी। **10 दिसम्बर समाज** के सदस्यों को (यह गिरोह पहले पहल लूई बोनापार्त के शासन-काल में स्थापित किया गया था) जब श्रमिकों की कुर्तियां पहनाकर युद्धक्रीड़ा करते हुए युद्ध-उन्माद की कलाबाज़ियां दिखाने के लिये पेरिस की सड़कों पर छोड़ दिया गया, तो उपनगर के असली मज़दूरों ने शान्ति के लिये इतना ज़बर्दस्त जन-प्रदर्शन निकाला कि पुलिस-कमिशनर पियेत्री ने सड़कों पर सारे प्रदर्शनों को बन्द कर देने में ही बुद्धिमानी समझी। ऐसा उसने यह कहकर किया कि पेरिस की असली जनता देशभक्ति के अपने अवरुद्ध उद्‌गार तथा युद्ध के प्रति अतीव उत्साह का पर्याप्त प्रदर्शन कर चुकी है।

प्रशा के साथ लूई बोनापार्त के युद्ध का अन्त चाहे जो भी हो, पेरिस में द्वितीय साम्राज्य की मौत की घंटी अब बज चुकी है। जिस प्रकार उसका आरम्भ स्वांग के साथ हुआ था, उसी प्रकार उसका अन्त भी स्वांग के साथ होगा। लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिये कि ये यूरोपीय सरकारें और यूरोप के शासक वर्ग ही हैं, जिन्होंने लूई बोनापार्त को 18 वर्षों के दौरान **पुनःस्थापित साम्राज्य** का भयावह प्रहसन चलाने में सक्षम बनाया।

जर्मनी के लिये यह युद्ध प्रतिरक्षा का युद्ध है। पर जर्मनी के लिये अपनी रक्षा करने की आवश्यकता किसने उत्पन्न की? किसने लूई बोनापार्त को उसके विरुद्ध युद्ध करने के लिये सक्षम बनाया? **प्रशा ने!** वह शख़्स बिस्मार्क ही था, जिसने अपने देश में जन-विरोध को कुचलने के लिये और होहेनज़ालर्न राजवंश द्वारा जर्मनी के हड़प के लिये जाने इसी लूई बोनापार्त से मिलकर षड्यंत्र किया था। यदि सादोवा की लड़ाई में जीत के बदले हार हुई होती तो फ़्रांस की बटालियनें प्रशा के मित्र के रूप में जर्मनी पर चढ़ गयी होतीं। अपनी विजय के बाद क्या प्रशा ने एक क्षण के लिये भी दासता की बेड़ियों में पड़े फ़्रांस के मुक़ाबले में स्वतंत्र जर्मनी को खड़ा करने की बात सोची? बात ठीक उल्टी ही हुई! अपनी पुरानी व्यवस्था की तमाम स्वाभाविक ख़ूबियां सुरक्षित रखते हुए उसने दूसरे साम्राज्य के तमाम हथकंडे अपना लिये—उसकी वास्तविक निरंकुशता, उसका नक़ली जनवाद, उसका राजनीतिक स्वांग, उसकी वित्तीय सट्टेबाज़ी, उसकी लफ़्फ़ाज़ी, उसकी मक्कारी। बोनापार्त के शासन को, जो अब तक राइन के केवल एक तट पर पनप रहा था, अब राइन के दूसरी ओर भी अपना जाली समरूप मिल गया। ऐसी वस्तुस्थिति का **युद्ध** के अतिरिक्त और क्या परिणाम हो सकता था?

यदि जर्मनी का मज़दूर वर्ग मौजूदा युद्ध को अपना सर्वथा प्रतिरक्षात्मक चरित्र खोकर फ़्रांसीसी जनता के विरुद्ध युद्ध का पतित रूप धारण करने देगा, तो जीत और हार दोनों समान रूप से विनाशकारी सिद्ध होंगी। जर्मनी के ऊपर उसके स्वातंत्र्य-युद्ध के बाद मुसीबतों का जो पहाड़ टूटा था, वह कहीं अधिक भीषणता के साथ उसके ऊपर फिर टूट पड़ेगा।

पर इंटरनेशनल के सिद्धान्त जर्मन मज़दूर वर्ग में इतने व्यापक और इतनी गहरी तरह से पैठे हुए हैं कि ऐसी विषादपूर्ण निष्पत्ति की आशंका नहीं करनी चाहिये। फ़्रांसीसी मज़दूरों के स्वर जर्मनी में प्रतिध्वनित हुए हैं। 16 जुलाई को ब्रन्सविक में हुई मज़दूरों की एक आम सभा ने पेरिस घोषणापत्र के साथ अपनी पूर्ण सहमति व्यक्ति की, फ़्रांस के विरुद्ध राष्ट्रीय विग्रह की धारणा को ठुकराया और अपने प्रस्तावों की इन शब्दों के साथ निष्पत्ति की :

> "हम हर प्रकार के युद्ध के दुश्मन हैं, पर सबसे अधिक राजवंशीय युद्धों के दुश्मन हैं... एक अनिवार्य बुराई के रूप में हम प्रतिरक्षात्मक युद्ध गहरे विषाद एवं शोक के साथ सहन करने को विवश हैं, किन्तु साथ ही हम समस्त जर्मन मज़दूर वर्ग का आह्वान करते हैं कि वह हरेक जनगण को स्वयं युद्ध और शान्ति का निर्णय करने

का अधिकार उपलब्धि कराके तथा उन्हें अपने भाग्य का खुद मालिक बनाकर युद्ध जैसी भीषण सामाजिक विपत्ति की पुनरावृत्ति असम्भव बना दे।"

केमनिट्स में 50,000 सैक्सन मज़दूरों के प्रतिनिधियों की एक सभा ने इस आशय का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया :

"जर्मन जनवाद के नाम पर और विशेषकर जनवादी समाजवादी पार्टी को गठित करनेवाले मज़दूरों के नाम पर हम मौजूदा युद्ध को सोलहों आना राजवंशीय युद्ध क़रार देते हैं... फ़्रांस में मज़दूरों ने हमारी ओर बन्धुत्व का जो हाथ बढ़ाया है, उसे ग्रहण करने में हमें खुशी हो रही है... इंटरनेशनल के नारे–**'दुनिया के मज़दूरों, एक हो!'** को ध्यान में रखते हुए हम यह कभी नहीं भूलेंगे कि **सब** देशों के मज़दूर हमारे **मित्र** हैं, और **सब** देशों के निरंकुश शासक हमारे **शत्रु** हैं।"

इन्टरनेशनल की बर्लिन शाखा ने भी पेरिस के घोषणापत्र का जवाब दिया है :

"हम आपकी विरोध-घोषणा में दिलोजान से आप के साथ हैं... सत्यनिष्ठा के साथ हम वचन देते हैं कि न तो बिगुल की ध्वनि और न तोप की गरज, न जीत और न हार हमें सब देशों के श्रम के सपूतों की एकबद्धता के लिये अपने संयुक्त कार्य से विमुख कर सकेंगी।"

ऐसा ही हो!

इस आत्मघाती विग्रह की पृष्ठभूमि में रूस की काली छाया मंडरा रही है। यह एक अशुभ लक्षण है कि वर्तमान युद्ध का सिगनल ऐसे समय में दिया गया, जब मास्को की सरकार द्वारा सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रेलों का निर्माण ख़त्म हुआ था और प्रुथ नदी की दिशा में फ़ौजें जमा की जा रही थीं। बोनापार्त के आक्रमण के विरुद्ध अपने प्रतिरक्षात्मक युद्ध के लिये जर्मन जो भी सहानुभूति न्यायतः प्राप्त कर सकते हैं उसे वे फ़ौरन गंवा देंगे यदि वे प्रशा की सरकार को कज़्ज़ाकों की सहायता मांगने या उसे स्वीकार करने देंगे। उन्हें याद रखना चाहिये कि नेपोलियन प्रथम के विरुद्ध अपने स्वातंत्र्य-युद्ध के बाद जर्मनी कई पीढ़ियों तक ज़ार के क़दमों पर लोटता रहा।

इंगलैंड का मज़दूर वर्ग फ़्रांस और जर्मनी की मेहनतकश जनता की ओर भाईचारे का हाथ बढ़ाता है। उसे गहरा विश्वास है कि आगामी भयंकर युद्ध चाहे

जो भी मोड़ ले, अन्ततः सब देशों के मज़दूर वर्ग का संश्रय युद्ध का अन्त करके ही रहेगा। जबकि फ़्रांस और जर्मनी के सरकारी हलक़े एक दूसरे के ख़िलाफ़ भ्रातृघातक युद्ध में कूद रहे हैं, फ़्रांस और जर्मनी के मज़दूर एक दूसरे को शांति और सद्भावना के संदेश भेज रहे हैं। यह सारे अतीत के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है, जो एक उज्ज्वलतर भविष्य के मार्ग को उन्मुक्त कर देती है। वह सिद्ध करती है कि आर्थिक कष्टों और राजनीतिक भ्रान्तियों से पूर्ण पुराने समाज के मुक़ाबले में एक नया समाज जन्म ले रहा है, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त होगा **शान्ति**, क्योंकि उसका राष्ट्रीय शासक हर स्थान पर एक ही, अर्थात् **श्रम** होगा!

इस नये समाज का अग्रदूत इंटरनेशनल है।

256, हाई हॉलबर्न,

लन्दन, वेस्टर्न सेंट्रल,

23 जुलाई 1870।

5

फ़्रांको-एशियाई युद्ध के बारे में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की दूसरी चिट्ठी

कार्ल मार्क्स

यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका में इंटरनेशनल के सदस्यों के नाम

23 जुलाई की अपनी पहली चिट्ठी में हमने कहा था : "...पेरिस में द्वितीय साम्राज्य की मौत की घंटी अब बज चुकी है। जिस प्रकार उसका आरम्भ स्वांग के साथ हुआ था, उसी प्रकार उसका अन्त भी स्वांग के साथ होगा। लेकिन हमें भूलना न चाहिये कि ये यूरोपीय सरकारें और यूरोप के शासक वर्ग ही हैं जिन्होंने लूई बोनापार्त को 18 वर्षों के दौरान **पुनःस्थापित साम्राज्य** का भयावह प्रहसन चलाने में सक्षम बनाया।"

अतः युद्ध की कार्रवाई शुरू होने के पहले ही हमने बोनापार्ती बुलबुले को अतीत की वस्तु घोषित कर दिया था।

यदि द्वितीय साम्राज्य की जीवन-क्षमता के बारे में हमें भ्रम न था तो हमारी यह आशंका भी ग़लत न थी कि जर्मन युद्ध कहीं "अपना सर्वथा प्रतिरक्षात्मक चरित्र खोकर फ़्रांसीसी जनता के विरुद्ध युद्ध का पतित रूप धारण" न कर ले। प्रतिरक्षात्मक युद्ध वस्तुतः लूई बोनापार्त के आत्मसमर्पण, यानी सेदान की पराजय और पेरिस में जनतन्त्र की घोषणा के साथ समाप्त हो गया। पर इन घटनाओं के बहुत पहले से, उसी समय से जब साम्राज्यीय सैन्य-शक्ति की जीर्णशीर्णता प्रकट हो चुकी थी, प्रशा के सैनिक गुट ने फ़्रांस को जीतने का इरादा बना लिया था।

उसके रास्ते में केवल एक बेढंगी-सी बाधा खड़ी थी। यह थी **युद्ध के आरम्भ के समय स्वयं कैसर विल्हेल्म की घोषणा**। उत्तर जर्मन राइख़स्टाग के सक्षम अपने शाही भाषण में कैसर ने बड़ी गम्भीरता के साथ घोषणा की थी– हमारी लड़ाई फ़्रांस के सम्राट से हैं न कि फ़्रांसीसी जनता से। 11 अगस्त को कैसर ने फ़्रांसीसी राष्ट्र के नाम एक घोषणापत्र जारी किया था जिसमें उसने कहा :

> "सम्राट नेपोलियन ने स्थल और जल मार्ग से जर्मन राष्ट्र पर, जो फ़्रांसीसी जनता के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहता था और अब भी रहना चाहता है, आक्रमण कर दिया है, इसलिये हमने **इस आक्रमण को परास्त करने के लिये** जर्मन सेना की कमान ग्रहण कर ली है, और हमें **सामरिक घटनाओं से विवश होकर फ़्रांस की सरहद पार करनी पड़ी है।**"

कैसर ने इतना ही कहकर युद्ध के प्रतिरक्षात्मक स्वरूप पर ज़ोर नहीं दिया कि केवल **"आक्रमण को परास्त करने के लिये"** हमने जर्मन सेना की कमान ग्रहण कर ली है, वरन् यह भी कहा कि "सामरिक घटनाओं से विवश होकर" ही हमने फ़्रांस की सरहद पार की है। बेशक प्रतिरक्षात्मक युद्ध में "सामरिक घटनाओं" से बाध्य होकर आक्रमणात्मक कार्रवाइयां भी की जा सकती हैं।

चुनांचे यह नेक कैसर फ़्रांस तथा सारी दुनिया के सामने सर्वथा प्रतिरक्षात्मक युद्ध के लिये वचनबद्ध था। उसे उसकी इस गम्भीर वचन के बंधन से किस प्रकार मुक्त किया जाये? अतः रंगमंच के सूत्रधारों को यह दिखाना था कि जर्मन राष्ट्र के अप्रतिरोध्य आदेश के सामने कैसर को अनिच्छापूर्वक झुकना पड़ रहा है। उन्होंने फ़ौरन उदारपंथी जर्मन पूंजीपति वर्ग को–उसके प्रोफ़ेसरों, पूंजीपतियों, आल्डरमैनों और क़लमधारियों को–संकेत किया। यह जर्मन पूंजीपति वर्ग, जिसने 1846 से 1870 तक नागरिक स्वतंत्रता के अपने संघर्ष में अपने बेमिसाल ढुलमुलपन, अयोग्यता और कायरता का नमूना पेश किया था, अब, जाहिर है, जर्मन देशभक्ति के दहाड़ते हुए शेर के रूप में यूरोप के रंगमंच पर उतरकर ख़ुशी से फूला न समाता था। प्रशा की सरकार पर उसी के गुप्त मंसूबों को लादने का दिखावा करके जर्मन पूंजीपति वर्ग ने अपनी नागरिक स्वाधीनता को फिर से प्रदर्शित किया। वह लूई बोनापार्त की अचूक बुद्धिमत्ता में अपने चिरस्थायी और प्रायः धर्मतुल्य निष्ठा के साथ विश्वास का प्रायश्चित करने के लिए फ़्रांसीसी जनतन्त्र का अंगभंग करने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चीख़ रहा था। आइये, ज़रा इन दिलेर देशभक्तों की ख़ास दलीलों को सुनें।

वे यह कहने की जुर्रत नहीं करते कि अल्सास और लोरेन के लोग जर्मनों के आलिंगन-पाश में बंधने के लिये लालायित हैं; असलियत इससे उल्टी ही है। फ़्रांस के प्रति देशभक्ति की सज़ा देने के लिये स्ट्रासबुर्ग नगर पर, जिसका शासन-केन्द्र एक स्वतंत्र दुर्ग है, बड़ी दानवीयता के साथ छः दिनों तक बेहिसाब "जर्मन" विस्फोटक गोले बरसाये गये, जिससे शहर में आग लग गयी और न जाने कितने असहाय नागरिक मारे गये! चूंकि इन प्रांतों की ज़मीन किसी ज़माने में भूतपूर्व जर्मन साम्राज्य की मिलकियत थी, इसलिये इन ज़मीन को और इस पर पैदा हुए इंसानों को अहस्तान्तरणीय जर्मन सम्पत्ति मानकर ज़ब्त कर लेना चाहिये। लेकिन यदि यूरोप के नक़्शे को पुरातत्त्वान्वेषी रेखाओं के अनुसार फिर से बनाना है तो यह न भूलना चाहिये कि ब्राण्डनबुर्ग का एलेक्टर भी, अपनी प्रशियाई रियासतों के संबंध में, पोलैण्ड के जनतन्त्र का चाकर था।

परन्तु ज़्यादा होशियार देशभक्त लोग पूरे अल्सास और लोरेन के जर्मनभाषी भाग को फ़्रांस के विरुद्ध "ठोस गारंटी" के रूप में हथियाना चाहते हैं। इन लोगों की इस ओछी दलील ने बहुत-से दुर्बल बुद्धि के लोगों को गुमराह किया है, इसलिये इसकी विशद विवेचना करना ज़रूरी है।

इसमें सन्देह नहीं कि राइन के दूसरे तट की तुलना में अल्सास की आम बनावट तथा बाज़ेल और गेर्मेर्शगाइम के लगभग मध्य में स्ट्रासबुर्ग जैसे एक क़िलाबन्द बड़े शहर का होना दक्षिण जर्मनी पर आक्रमण करने के लिये फ़्रांस को बहुत ही अनुकूल स्थिति प्रदान करते हैं, जबकि दक्षिण जर्मनी द्वारा फ़्रांस पर चढ़ाई के लिये वे विशेष कठिनाइयां उपस्थित करेंगे। इसके अलावा इसमें भी सन्देह नहीं कि अल्सास और जर्मनभाषी लोरेन दोनों के मिल जाने से दक्षिण जर्मनी की सरहद कहीं अधिक दृढ़ हो जाती है, क्योंकि तब जर्मनी वोगेज़ की पूरी पर्वतमाला और उसके दुर्गों का, जो उसके उत्तरी दर्रों की रक्षा करते हैं, स्वामी बन जायेगा। और अगर मेत्ज़ भी ले लिया जाये तो फ़्रांस, निश्चित रूप से, जर्मनी के विरुद्ध जंगी कार्रवाई के अपने दो प्रधान अड्डों से एकदम वंचित हो जायेगा, लेकिन ऐसा होने पर नांसी या वेर्दें में उसे एक नया अड्डा बना लेने से नहीं रोका जा सकता। जर्मनी के पास कोब्लेन्ज़, माएन्ड, गेर्मेर्शगाइम, राष्टाट और उल्म हैं, जो सब के सब फ़्रांस के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई के अड्डे हैं और जिन्हें इस युद्ध में ख़ूब इस्तेमाल भी किया गया है। तो यह किस प्रकार न्यायसंगत है कि फ़्रांस के अधिकार में स्ट्रासबुर्ग और मेत्ज़ के होने पर जर्मनी बुरा माने, जबकि फ़्रांस के पास राइन के

इस तरफ़ यही दो किसी क़दर महत्वपूर्ण अड्डे हैं? इसके अलावा स्ट्रासबुर्ग दक्षिण जर्मनी के लिये तभी ख़तरा बन सकता है, जब दक्षिण जर्मनी उत्तर जर्मनी से पृथक शक्ति के रूप में हो। 1792 से 1795 तक दक्षिण जर्मनी पर इस ओर से कभी आक्रमण नहीं हुआ, क्योंकि प्रशा फ़्रांसीसी क्रान्ति के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित था; पर ज्यों ही 1795 में प्रशा ने अपनी अलग सन्धि कर ली और दक्षिण को अपने भाग्य पर छोड़ दिया, त्यों ही स्ट्रासबुर्ग को अड्डा बनाकर दक्षिण जर्मनी पर फ़्रांसीसी हमले शुरू हो गये और 1809 तक जारी रहे। असल बात यह है कि जर्मनी के **संयुक्त** रहने पर अपनी सारी सेनाएं सारलूई और लैण्डाऊ के बीच केन्द्रित करके, जैसा कि इस युद्ध में हुआ था, और माएन्ड और मेत्ज़ के बीच की सड़क के मोर्चे पर आवश्यकतानुसार आगे बढ़कर अथवा वहीं लोहा लेकर, वह स्ट्रासबुर्ग और अल्सास स्थित किसी भी फ़्रांसीसी सेना को बेकार बना सकता है। जब तक जर्मन सेना का आम जमाव इस मोर्चे पर रहेगा, स्ट्रासबुर्ग से दक्षिण जर्मनी में प्रवेश करनेवाली किसी भी फ़्रांसीसी सेना का पार्श्व उसके द्वारा घिर जायेगा और उन फ़्रांसीसी सेना की संचार-लाइन ख़तरे में पड़ जायेगी। वर्तमान युद्ध ने यदि कोई बात सिद्ध की है तो वह जर्मनी से फ़्रांस पर आक्रमण करने की सुगमता है।

लेकिन यदि नेकनीयती अपनायी जाये तो क्या फ़ौज़ी युक्तियों को राष्ट्रीय सीमाएं निर्धारित करने का आधार बना लेना विवेकशून्य और दक़ियानूसी बात नहीं है? अगर यही नियम मान लिया जाये तो आस्ट्रिया को अब भी वेनिस का इलाक़ा मिलना चाहिये और मिन्सियो नदी उसकी सरहद होनी चाहिये और फ़्रांस की भी सरहद राइन होनी चाहिये ताकि वह पेरिस का बचाव कर सके, जिस पर उत्तर-पूर्व से हमले का अधिक ख़तरा है बनिस्बत बर्लिन पर दक्षिण-पश्चिम से। यदि सामरिक हितों की दृष्टि से सीमाएं निर्धारित की जाने लगें, तो फिर दावों का कभी अंत ही न होगा, क्योंकि प्रत्येक सामरिक रेखा अनिवार्यतः त्रुटिपूर्ण होती है, जिसे दूसरी ओर की थोड़ी-सी और भूमि हस्तगत कर लेने से सुधारा जा सकता है। इसके अलावा ऐसी रेखाएं कभी अंतिम रूप से एवं न्यायपूर्ण तरीक़े के निर्धारित नहीं की जा सकतीं क्योंकि ऐसी सीमा जब भी बनेगी वह विजेता द्वारा पराजित पर लादकर ही बनेगी; फलतः उसके अन्दर नये युद्धों के बीज मौजूद रहेंगे।

पूरे इतिहास का यही सबक़ है। जो बात व्यक्तियों पर लागू होती है वही राष्ट्रों पर भी। आक्रामक शक्ति से वंचित करने के लिये उन्हें प्रतिरक्षा के साधनों से भी वंचित करना आवश्यक है। गले में फंदा बांधना काफ़ी नहीं है, हत्या भी

करनी होगी। अगर कभी किसी विजेता ने किसी राष्ट्र की नसें तोड़ने के लिये "ठोस गारंटियां" ली हैं तो ऐसा तिलसित की संधि द्वारा और जिस प्रकार वह संधि प्रशा और बाक़ी जर्मनी के ख़िलाफ़ अमल में लाई गयी उसके द्वारा नेपोलियन प्रथम ने किया था। लेकिन कुछ ही वर्षों के भीतर उसकी विराट शक्ति जर्मन जनता के समक्ष सड़े हुए सरकंडों की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गयी। वे कौनसी "ठोस गारंटियां" हैं, जिन्हें प्रशा, अपने अधिक से अधिक पागलपन के सपने में भी, फ़्रांस के ऊपर लाद सकता है या लादने का साहस कर सकता है—उन "ठोस गारंटियों" के मुक़ाबले में, जो नेपोलियन प्रथम ने प्रशा से बलपूर्वक हासिल की थीं? प्रशा को उससे कम अनर्थपूर्ण परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा। इतिहास इसका जो दण्ड देगा उसकी माप वह इससे नहीं करेगा कि फ़्रांस से कितने वर्ग मील भूमि जीती गयी थी, वरन् वह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **देश-विजय की नीति** को फिर से जीवित करने के अपराध की प्रगाढ़ता द्वारा की जायेगी।

किन्तु ट्यूटोनी देशभक्ति से भोंपुओं का तर्क है कि जर्मनों की तुलना हरग़िज़ फ़्रांसीसियों से नहीं की जानी चाहिए। **हम लोग** तो केवल सुरक्षा चाहते हैं, न कि कीर्ति। जर्मन लोग स्वभाव से शान्तिप्रेमी हैं। उनके स्वस्थचित्त संरक्षण में विजय खुद-ब-खुद भावी युद्ध के लिये अनुकूल अवस्था से शाश्वत शान्ति की गारंटी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। क्या वे जर्मन नहीं थे, जिन्होंने 18वीं शताब्दी की क्रान्ति को संगीनों का शिकार बनाने के उच्च उद्देश्य से 1792 में फ़्रांस पर आक्रमण किया था? क्या वे जर्मन नहीं थे, जिन्होंने इटली को पददलित करके, हंगरी पर ज़ुल्म ढाकर और पोलैण्ड का अंगभंग करके अपने हाथ कलुषित किये थे? उनकी वर्तमान सैनिक व्यवस्था, जो देश की पूरी वयस्क मर्द आबादी को दो भागों में विभक्त करती है—एक स्थायी और सेवालग्न सेना और दूसरी अवकाश प्राप्त स्थायी सेना, और दोनों ईश-निर्धारित शासकों के प्रति समान और निश्चेष्ट रूप से आज्ञापालन में कटिबद्ध—ऐसी सैनिक व्यवस्था बेशक शान्ति क़ायम रखने और जर्मनों की सभ्यता विस्तरण की प्रवृत्तियों के अंतिम लक्ष्य को पूरा करने की "ठोस गारंटी" है! जर्मनी में, जैसा कि हर जगह में, सत्ताधारियों के चाटुकार मिथ्या आत्मप्रशंसा के लोबान द्वारा आम जनता के मस्तिष्क को विषाक्त करते हैं।

मेत्ज़ और स्ट्रासबुर्ग में फ़्रांसीसी दुर्गों को देखकर आक्रोश से भर जाने का स्वांग करनेवाले इन जर्मन देशभक्तों को वारसा, मोदलिन और इवानगोरोद में रूस की विशाल क़िलेबन्दी में कोई हानि दिखाई नहीं देती। बोनापार्तीय आक्रमण को

दहशत का शोर मचाते हुए वे ज़ार के शासन के अभिरक्षण की कुत्सितता पर आंखे झपकाते हैं।

जिस प्रकार 1865 में लूई बोनापार्त और बिस्मार्क ने एक दूसरे से प्रतिज्ञाएं की थीं, उसी प्रकार 1870 में गोर्चाकोव और बिस्मार्क ने एक दूसरे से प्रतिज्ञाएं की हैं। जिस प्रकार लूई बोनापार्त यह सोचकर दिल में ख़ुश हुआ था कि 1866 के युद्ध में आस्ट्रिया और प्रशा के समान रूप से पस्त हो जाने पर वह जर्मनी का भाग्य-विधाता बन जायेगा, उसी तरह अलेक्सान्द्र यह सोचकर ख़ुश हुआ था कि 1870 के युद्ध में जर्मनी और फ़्रांस के समान रूप से पस्त हो जाने से वह पश्चिमी यूरोप का भाग्य-विधाता बन जायेगा। जिस तरह द्वितीय साम्राज्य ने उत्तर-जर्मन संघ को अपने अस्तित्व के प्रतिकूल समझा था, उसी तरह एकतंत्रीय रूस, प्रशा के नेतृत्व में जर्मन साम्राज्य को अपने लिये अवश्य ही ख़तरा समझेगा। पुरानी राजनीतिक व्यवस्था का यही नियम है। उसकी परिधि के अन्दर एक राज्य का लाभ दूसरे की हानि है। यूरोप पर ज़ार के सर्वोपरि प्रभाव का मूल कारण जर्मनी पर उसका परम्परागत प्रभाव है। ऐसे समय में, जब ख़ुद रूस में ज्वालामुखी जैसी विस्फोटक सामाजिक शक्तियां एकतंत्रीय शासन की नींव को हिला देने का ख़तरा पैदा कर रही हैं, क्या ज़ार अपनी वैदेशिक प्रतिष्ठा की ऐसी हानि कभी सहन कर सकता है? मास्को के अख़बार अभी से ही वही बात दुहराने लगे हैं जो 1866 के युद्ध के बाद बोनापार्तवादी अख़बार कर रहे थे। क्या ट्यूटोनी देशभक्त सचमुच यह विश्वास करते हैं कि फ़्रांस को रूस के आलिंगन-पाश में बंधने के लिये विवश कर जर्मनी को स्वातंत्र्य और शांति की गारंटी प्राप्त हो जायेगी? यदि सैनिक जीतें, सफलताजनित उद्धतता और राजवंशीय दुरभिसन्धियां जर्मनी को फ़्रांस के अंगभंग के मार्ग पर ले जाती हैं तो उसके लिये केवल दो ही रास्ते रह जाते हैं : या तो हर जोख़िम उठाकर उसे रूसी राज्य-विस्तार का **प्रकट** हथियार बनना पड़ेगा या थोड़े अवकाश के बाद उसे एक नये "प्रतिरक्षात्मक" युद्ध के लिये फिर तैयार होना होगा। और यह युद्ध उन नवकल्पित युद्धों की तरह "स्थान-सीमित" युद्ध नहीं होगा, बल्कि यह **जाति-युद्ध** होगा–संयुक्त स्लाव और रोमन जातियों के साथ युद्ध।

जर्मन मज़दूर वर्ग ने इस युद्ध का, जिसे रोकना उसके सामर्थ्य के बाहर था, दृढ़तापूर्वक समर्थन किया है, यह सोचकर किया है कि यह युद्ध जर्मनी की स्वाधीनता के लिये और फ़्रांस और यूरोप को द्वितीय साम्राज्यरूपी उन विनाशकारी

दुःस्वप्न से मुक्त करने के लिये है। वे कारख़ानों और देहात के जर्मन मज़दूर थे, जो अपने अर्द्ध-क्षुधाग्रस्त परिवारों को पीछे छोड़कर वीरतापूर्वक लड़नेवाली सेनाओं के रग और पुट्ठों का काम कर रहे थे। विदेशी युद्धों में एक बड़ी संख्या में मौत का शिकार होने के बाद अब वे तबाही के कारण देश में भी एक बड़ी संख्या में मारे जायेंगे। बदले में अब वे भी "गारंटियों" की मांग कर रहे हैं–ऐसी गारंटियों की कि उनका यह भारी बलिदान, कि उन्होंने स्वतंत्रता लड़कर हासिल की है, बेकार न हो जाये, कि साम्राज्यीय फ़ौजों पर प्राप्त की गयी विजय 1815 की भांति जर्मन जनता की पराजय में परिवर्तित नहीं की जायेगी। और इन गारंटियों में सबसे पहली गारंटी वे यह चाहते हैं कि **फ़्रांस से सम्मानपूर्वक सन्धि की जाये** और **फ़्रांसीसी जनतन्त्र को मान्यता प्रदान की जाये।**

जर्मन समाजवादी-जनवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति ने 5 सितम्बर को एक घोषणापत्र निकालकर इन गारंटियों की पुरज़ोर मांग की। उसमें उसने कहा :

> "हम अल्सास और लोरेन के समामेलन का विरोध करते हैं। और हमें यह एहसास है कि हम जर्मन मज़दूर वर्ग की ओर से बोल रहे हैं। फ़्रांस और जर्मनी के समान हित में, शान्ति और स्वातंत्र्य के हित में, पूर्वीय बर्बरता के विरुद्ध पश्चिमी सभ्यता के हित में जर्मन मज़दूर वर्ग अल्सास और लोरेन का समामेलन कदापि चुपचाप सहन नहीं करगेा... हम सर्वहारा वर्ग के समान अन्तर्राष्ट्रीय ध्येय के लिये हर देश के अपने मज़दूर-बन्धुओं का वफ़ादारी से साथ देंगे!"

दुर्भाग्यवश, हम यह आशा नहीं कर सकते कि उन्हें तत्काल सफलता मिलेगी। फ़्रांस के मज़दूर जब शान्ति की अवस्था में आक्रामकों को रोकने में असफल हुए, तो क्या जर्मन मज़दूरों के लिये हथियारों की खनखनाहट के बीच विजेताओं को रोकने में सफल होने की अधिक सम्भावना हो सकती है? जर्मन मज़दूरों के घोषणापत्र में एक साधारण आततायी की हैसियत से लूई बोनापार्त को फ़्रांसीसी जनतन्त्र के हवाले कर देने की मांग की गयी है। परन्तु इसके विपरीत उनके शासक लूई बोनापार्त को, फ़्रांस को चौपट करने के लिये योग्यतम पुरुष की तरह, तूलरी में पुनः प्रतिष्ठित करने की भरपूर कोशिश में लगे हुए हैं। जो भी हो इतिहास यह सिद्ध करेगा कि जर्मन मज़दूर वर्ग उस कच्ची धातु से नहीं बना है, जिससे कि जर्मन पूंजीपति वर्ग बना है। वह अपना कर्त्तव्य पूरा करेगा।

उन्हीं की तरह, हम भी फ़्रांस में जनतन्त्र की स्थापना का स्वागत करते हैं, पर साथ ही हमें कुछ आशंकाएं भी हैं जो, हम आशा करते हैं, निराधार सिद्ध होंगी। जनतन्त्र ने राजसिंहासन का अन्त नहीं किया है, अपितु उसका रिक्त स्थान ग्रहण कर लिया है। जनतन्त्र की घोषणा सामाजिक विजय के रूप में नहीं की गयी, वरन् प्रतिरक्षा के लिये राष्ट्रीय कार्रवाई के रूप में। जनतन्त्र एक ऐसी अस्थायी सरकार के हाथों में है, जिसमें कुछ तो कुख्यात आर्लियानिस्ट और कुछ पूंजीवादी जनतन्त्रवादी हैं, जिनमें से कई के माथों पर जून 1848 की बग़ावत ने कलंक का अमिट टीका लगा दिया है। इस सरकार के सदस्यों के बीच जो पद-विभाजन हुआ है, वह भी बेढंगा सा है। आर्लियानिस्टों ने फ़ौज और पुलिस के ज़बर्दस्त महकमों पर क़ब्ज़ा कर लिया है, जबकि जनतन्त्रवाद का दम भरनेवालों के हिस्से में बकवास करनेवाले विभाग पड़े हैं। उनके कुछ आरम्भिक कारनामे पर्याप्त स्पष्टता के साथ प्रगट करते हैं कि उन्होंने साम्राज्य से विरासत में केवल बरबादी ही नहीं प्राप्त की है, वरन् मज़दूर वर्ग के प्रति ख़ौफ़ भी अपना लिया है। यदि जनतन्त्र से अनाप-शनाप शब्दों में असम्भव वस्तुओं की मांग की जा रही है, तो क्या उसका अभिप्राय यह नहीं है कि एक "सम्भव" सरकार की मांग की तैयारी हो रही है? क्या जनतन्त्र के कुछ पूंजीवादी सूत्रधार उसे केवल एक कामचलाऊ बन्दोबस्त और आर्लियानिस्ट हुकूमत की पुनःस्थापना के लिये सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल करना नहीं चाह रहे हैं?

अतः फ़्रांस का मज़दूर वर्ग बहुत ही टेढ़े मार्ग से गुज़र रहा है। वर्तमान संकट में, जबकि शत्रु पेरिस के द्वार पर खड़ा है, नयी सरकार को उलटने की कोई भी कोशिश भयंकर मूर्खता होगी। फ़्रांस के मज़दूरों को अपना नागरिक कर्त्तव्य अवश्य ही पूरा करना चाहिये, किन्तु साथ ही उन्हें फ़्रांसीसी किसानों की तरह, जिन्होंने अपने को प्रथम साम्राज्य की राष्ट्रीय परम्पराओं के धोखे में आने दिया था, अपने को 1792 की राष्ट्रीय परम्पराओं के धोखे में नहीं आने देना चाहिये। उन्हें अतीत के गीत नहीं गाने है, वरन् भविष्य का निर्माण करना है। उन्हें जनतन्त्रीय स्वातंत्र्य द्वारा जो सुविधायें प्राप्त हैं, उन्हें शान्ति और संकल्प के साथ अपने वर्ग-संगठन के कार्यों के लिये और भी पर्याप्त बनाना चाहिये। ऐसा करने से उन्हें फ़्रांस के नवोत्थान के लिये तथा हमारे संयुक्त कार्य, अर्थात् श्रम की मुक्ति के लिये हरकुलीज़ के समान तथा नया बल प्राप्त होगा। उनकी स्फूर्ति और बुद्धिमत्ता पर जनतन्त्र का भाग्य निर्भर करता है।

इंगलैंड के मज़दूर फ़्रांसीसी जनतन्त्र को मान्यता प्रदान करने में बाहर से स्वस्थ दबाव के द्वारा अपनी सरकार की आनाकानी को दूर करने की दिशा में पग उठा चुके हैं। ब्रिटिश सरकार की मौजूदा टालमटोल का उद्देश्य शायद 1792 के जैकोबिन-विरोधी युद्ध के लिये और coup d'état को मान्यता प्रदान करने में दिखायी गयी भोंडी जल्दबाज़ी के लिये प्रायश्चित करना है। इंगलैंड के मज़दूर अपनी सरकार से यह भी मांग कर रहे हैं कि वह फ़्रांस का अंगभंग किये जाने का, जिसकी कुछ अंग्रेज़ी अख़बार बड़ी बेहयाई के साथ ज़ोर-शोर से मांग कर रहे हैं, अपनी पूरी शक्ति से विरोध करे। ये वे ही अख़बार हैं, जिन्होंने बीस वर्ष तक लूई बोनापार्त को यूरोप का विधाता कहकर उसकी पूजा की थी और जिन्होंने अमरीकी दास-स्वामियों के विद्रोह को उन्नत हर्ष-ध्वनि के साथ प्रोत्साहन दिया था। उस समय की ही तरह आज भी ये अख़बार दास-स्वामियों की चाकरी करते हैं।

इन्टरनेशनल की शाखाओं को चाहिये कि वे हर देश में मज़दूर वर्ग को संघर्ष के लिये आन्दोलित करें। यदि वे अपने कर्त्तव्य में चूकेंगे, यदि वे निष्क्रिय रहेंगे, तो वर्तमान विराट् युद्ध इससे भी अधिक विनाशकारी अन्तर्राष्ट्रीय लड़ाइयों का अग्रदूत बनेगा, और हर राष्ट्र में तलवार धारण करनेवाले, धरती और पूंजी के स्वामी मज़दूरों के ख़िलाफ़ और भी नई विजय प्राप्त करेंगे।

256, हाई हॉलबर्न,
लन्दन, वेस्टर्न सेंट्रल,
सितम्बर 1870।

6
मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में

फ़्रेडरिक एंगेल्स

21 सितम्बर 1871 को इंटरनेशनल के लंदन सम्मेलन में दिया गया भाषण

राजनीतिक क्रिया में सर्वथा विरत रहना असंभव है। विरतिवादी समाचारपत्र रोज़ाना राजनीति में भाग लेते हैं। प्रश्न केवल यह है कि आप राजनीति में कैसे भाग लेते हैं और किस प्रकार की राजनीति में भाग लेते हैं। बाक़ी बात यह है कि हमारे लिए राजनीति से विरत रहना असंभव है। अब तक अधिकांश देशों में मज़दूर वर्ग की पार्टी राजनीतिक पार्टी के रूप में कार्य करने लगी है, और हमारा काम यह नहीं है कि राजनीति से विरत रहने का प्रचार करके उसे चौपट कर डालें। जीवंत अनुभव, मौजूदा सरकारों का राजनीतिक उत्पीड़न मज़दूरों को राजनीति में दख़ल देने के लिए विवश करता है, चाहे वे इसे चाहें या न चाहें, चाहें वे ऐसा राजनीतिक लक्ष्यों के लिए करें या सामाजिक। उन्हें राजनीति से विरत रहने का उपदेश देकर हम उन्हें पूंजीवादी राजनीति के जाल में फंसा देंगे। पेरिस कम्यून के बाद, जिसने सर्वहारा की राजनीतिक क्रिया को आज की कार्यसूची में दाख़िल कर दिया, राजनीति से विरत रहने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

हम वर्गों का उन्मूलन चाहते हैं। इसे पूरा करने का क्या साधन है? इसका एकमात्र साधन सर्वहारा का राजनीतिक प्रभुत्व है। फिर भी अब, जब सभी इस बात को मानते हैं, हमसे कहा जाता है कि हम राजनीति में दख़ल न दें! विरतिवादी कहते हैं कि वे क्रांतिकारी हैं, यहां तक कि सर्वश्रेष्ठ क्रांतिकारी हैं। लेकिन क्रांति राजनीतिक क्रिया की पराकाष्ठा है और जो लोग क्रान्ति चाहते हैं वे उसे सम्पन्न

करने के साधन, अर्थात् राजनीतिक क्रिया के प्रति उदासीन नहीं हो सकते। इस क्रिया से ही क्रांति के लिए ज़मीन तैयार होती है और मज़दूरों को वह क्रांतिकारी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, जिसके बिना वे लड़ाई के दूसरे ही दिन फ़ाव्र तथा प्यात जैसे लोगों के धोखे में आये बिना नहीं रह सकते। मगर यह ज़रूर है कि हमारी राजनीति मज़दूर वर्ग की राजनीति होनी चाहिए; मज़दूर पार्टी को किसी पूंजीवादी पार्टी का दुमछल्ला कभी नहीं होना चाहिए; वह स्वाधीन होनी चाहिए, उसका अपना लक्ष्य, अपनी नीति होनी चाहिए।

राजनीतिक स्वातंत्र्य–सभा और संघ स्वातंत्र्य तथा प्रेस स्वातंत्र्य–ये हमारे अस्त्र हैं। जब कोई हमारे इन अस्त्रों को चुरा लेने की कोशिश करता है तब क्या हम चुपचाप हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और राजनीति से विरत रहें? कहा जाता है कि अगर हम कोई राजनीतिक कार्रवाई करते हैं तो इसका मतलब यह है कि हम मौजूदा वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हैं। परन्तु जब तक मौजूदा वस्तुस्थिति हमें उसका प्रतिवाद करने का साधन प्रदान करती है, तब तक इन साधनों को इस्तेमाल करने का मतलब यह नहीं है कि हम मौजूदा वक़्त में हावी व्यवस्था को स्वीकार करते हैं।

7
हेग में हुई जनरल कांग्रेस के प्रस्तावों का एक अंश

कार्ल मार्क्स तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स

2-7 सितम्बर 1872

1. नियमावली पर प्रस्ताव

लन्दन कांफ़्रेंस (सितम्बर 1871) के प्रस्ताव 9 का सार प्रस्तुत करनेवाली निम्नलिखित धारा नियमावली की धारा 7 के बाद जोड़ी जाये।

धारा 7 क। सम्पत्तिधारी वर्गों की संयुक्त सत्ता के विरुद्ध अपने संघर्ष में सर्वहारा अपने को एक विशेष राजनीतिक पार्टी में गठित करके ही वर्ग के रूप में काम कर सकते हैं जो सम्पत्तिधारी वर्गों की तमाम पुरानी पार्टियों के विरुद्ध हो।

राजनीतिक पार्टी में सर्वहारा का यह गठन सामाजिक क्रांति की और उसके अन्तिम लक्ष्य–वर्गों के उन्मूलन के लक्ष्य–की विजय सुनिश्चित करने के लिए अपरिहार्य है।

मज़दूर वर्ग की शक्तियों की संयुक्त ताक़त को, जो आर्थिक संघर्ष द्वारा हासिल हो चुकी है, इस वर्ग के हाथों में अपने शोषकों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में उत्तोलक का काम भी करना होगा।

चूंकि भूमि तथा पूंजी के अधिपति अपनी आर्थिक इजारेदारियों को बरक़रार रखने और श्रम को दास बनाने के लिए अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों का सदैव उपयोग करते हैं, इसलिए राजनीतिक सत्ता विजित करना सर्वहारा का महान् कर्त्तव्य हो जाता है।

5 के विरुद्ध 29 मतों से अनुमोदित; 8 ने मतदान में भाग नहीं लिया...

8
हेग कांग्रेस

कार्ल मार्क्स

एम्स्टेरडम में 8 सितम्बर 1872 को आयोजित सभा में किये गये भाषण का सम्वाददाता द्वारा लिखित रूप

मार्क्स ने कहा था–18वीं शताब्दी में राजा और महाराजा अपने राजवंशों के हितों पर विचार-विमर्श करने हेग में जमा हुआ करते थे।

सारे भय दिखाये जाने के बावजूद हमने यहीं मज़दूरों की कांग्रेस आयोजित करने का निर्णय किया। हम सबसे प्रतिक्रियावादी आबादी के बीच अपने महान संघ के अस्तित्व, उसके विस्तार, भविष्य में उसकी आशाओं को अभिपुष्ट करना चाहते थे।

हमारा निर्णय सुनने के बाद कहा गया कि हमने मैदान साफ़ करने के लिए दूत भेजे थे। हम इस बात से इनकार नहीं करते कि हमारे दूत सब जगह फैले हुए हैं; परन्तु उनमें से अधिकांश से हम अपरिचित हैं। हेग में हमारे दूत वे मज़दूर थे जिनका श्रम कमरतोड़ होता है; एम्सटरडम में भी हमारे दूत मज़दूर हैं जो 16 घंटे रोज़ मेहनत करते हैं। वे ही हमारे दूत हैं, और कोई नहीं। और समस्त देशों में, जहां हम पहुंचते हैं, हम देखते हैं कि वे हमारा मित्रतापूर्वक स्वागत करने के लिए इच्छुक हैं क्योंकि वे बहुत जल्द अनुभव कर लेते हैं कि उनकी दशा सुधारना ही हमारा ध्येय है।

हेग कांग्रेस ने तीन मुख्य कार्य किये :

उसने मेहनतकश वर्गों के लिए सामाजिक क्षेत्र की ही तरह राजनीतिक क्षेत्र में भी पुराने, ढह रहे समाज के विरुद्ध संघर्ष करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। और हमें प्रसन्नता है कि लन्दन कांफ्रेंस का यह प्रस्ताव अब हमारी नियमावली में

शामिल कर लिया गया है। हमारे बीच एक ऐसा समूह बन गया था जो मज़दूरों की राजनीति से विरति की वकालत कर रहा था।

हमने यह लक्षित करना महत्वपूर्ण माना कि हमने इन सिद्धान्तों को अपने ध्येय के लिए कितना ख़तरनाक और अभिशापपूर्ण माना।

मज़दूर को किसी न किसी दिन राजनीतिक सत्ता हासिल करनी होगी ताकि वह श्रम को नये ढर्रे पर संगठित कर सके। यदि मज़दूर वर्ग यह नहीं चाहता कि वह प्रथम ईसाइयों की ही तरह, जो राजनीति की उपेक्षा करते थे तथा उससे घृणा करते थे, पृथ्वी पर अपने राज से सदा-सर्वदा के लिए वंचित रहें, तो उसे पुराने संस्थानों का समर्थन करनेवाली पुरानी नीति को परास्त करना होगा।

परन्तु हमने कभी यह दावा नहीं किया कि यह लक्ष्य एक जैसे साधनों से हासिल होगा।

हम जानते हैं कि विभिन्न देशों के संस्थानों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं को ध्यान में रखना आवश्यक है; और हम इस बात से इनकार नहीं करते कि अमरीका, इंगलैंड जैसे देशों में—और यदि आपके संस्थानों के बारे में मेरा ज़्यादा अच्छा ज्ञान हो तो मैं इन देशों में हालैंड को भी शामिल करता—मेहनतकश जनता अपना ध्येय शान्तिपूर्ण साधनों से पूरा कर सकती है। यदि यह सच है तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि महाद्वीप के अधिकांश देशों में शक्ति को ही हमारी क्रान्तियों का उत्तोलक बनना होगा; यह शक्ति ही है जिसका हमें श्रम का राज स्थापित करने के लिए किसी न किसी दिन आश्रय लेना पड़ेगा।

हेग कांग्रेस ने जनरल कौंसिल को नये तथा पहले से अधिक अधिकार दिये हैं। वास्तव में, ऐसे समय जब राजा लोग बर्लिन में जमा हुए हैं, जहां सामन्ती व्यवस्था तथा पुराने ज़माने के प्रतिनिधियों की इस सभा में हमारे विरुद्ध नयी तथा अधिक कठोर दमनात्मक कार्रवाइयां तय की जानेवाली हैं और जब दमनचक्र घूमना शुरू हो चुका है, हेग कांग्रेस ने अपनी जनरल कौंसिल के अधिकारों को बढ़ाना तथा शुरू होने ही वाले संघर्ष के लिए कार्रवाई का केन्द्रीयकरण करना, जिसे अलगाव निरर्थक बना देगा, आवश्यक तथा विवेकपूर्ण समझा है। इसके अलावा जनरल कौंसिल की सत्ता हमारे दुश्मनों के अलावा और किसमें घबराहट पैदा कर सकती है? तो क्या उसके पास अपनी इच्छा थोपने के लिए नौकरशाही मशीन और सशस्त्र पुलिस है? क्या उसकी सत्ता विशुद्धताः नैतिक नहीं है? क्या

वह अपने सारे निर्णय फ़ेडरेशनों के हवाले नहीं करती जिन्हें ये निर्णय क्रियान्वित करने का काम सौंपा जाता है? इन परिस्थितियों में, बिना सेना, बिना पुलिस, बिना सरकारी अमले के राजाओं को यदि अपनी शक्ति मात्र नैतिक प्रभाव तथा नैतिक सत्ता पर अवलम्बित रखनी पड़े तो वे क्रान्ति के पथ में अत्यन्त क्षीण बाधक होंगे।

आख़िरी चीज़, हेग कांग्रेस ने जनरल कौंसिल का कार्यालय न्यूयार्क स्थानान्तरित कर दिया है। बहुत-से लोग, स्वयं हमारे कुछ दोस्त तक इस निर्णय से विस्मित हो गये प्रतीत होते हैं। तो क्या वे यह भूल रहे हैं कि अमरीका मुख्यतया मेहनतकश लोगों का संसार बनता जा रहा है, कि हर साल पांच लाख व्यक्ति—मेहनतकश लोग—वहां जाकर बस रहे हैं, कि ऐसी धरती पर, जहां मेहनतकश छाया हुआ हो, इंटरनेशनल को अपनी जड़ मज़बूत बनानी चाहिए? और फिर कांग्रेस का निर्णय जनरल कौंसिल को ऐसे सदस्य सहयोजित करने का अधिकार देता है जिन्हें वह समान ध्येय के लाभार्थ आवश्यक तथा उपयोगी समझती हो। हमें आशा करनी चाहिए कि वह ऐसे लोग चुनने की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करेगी जिनमें अपना कार्यभार ठीक तरह वहन करने की योग्यता होगी तथा जो यूरोप में हमारे संघ के झंडे को दृढ़तापूर्वक पकड़े रह सकेंगे।

नागरिकों, हमें इंटरनेशनल के मूल सिद्धान्त—एकजुटता—की बात सोचनी चाहिए। तमाम देशों के तमाम मेहनकश लोगों के बीच इस जीवनदायी सिद्धान्त को दृढ़ आधार पर स्थापित करके ही हम अपने लिए निर्धारित महान लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं। क्रांति को एकजुटता की ज़रूरत है और हमारे सामने इसकी एक बहुत बड़ी मिसाल पेरिस कम्यून के रूप में मौजूद है जिसका पतन इसलिए हुआ कि तमाम केंद्रों में, बर्लिन में, मैड्रिड में तथा अन्यत्र एकसाथ एक ऐसे महान क्रान्तिकारी आन्दोलन की आग नहीं भड़की जो पेरिस के सर्वहारा के विप्लव के स्तर तक पहुंच पाता।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तमाम मेहनतकश लोगों के बीच भविष्य में भी यह फलप्रद एकजुटता स्थापित करने के लिए प्रयत्न करता रहूंगा तथा अडिगतापूर्वक कार्य करता रहूंगा। मैं इंटरनेशनल से कदापि नहीं हट रहा हूं। और अपने पूर्व प्रयासों की तरह मेरा शेष जीवन भी सामाजिक विचारों की विजय के लिए अर्पित रहेगा जिनके परिणामस्वरूप—और आप इसे निश्चित समझें—सर्वहारा की विश्वव्यापी विजय होकर रहेगी।

❑❑❑